जिनभाषित

वीर निर्वाण सं. 2535

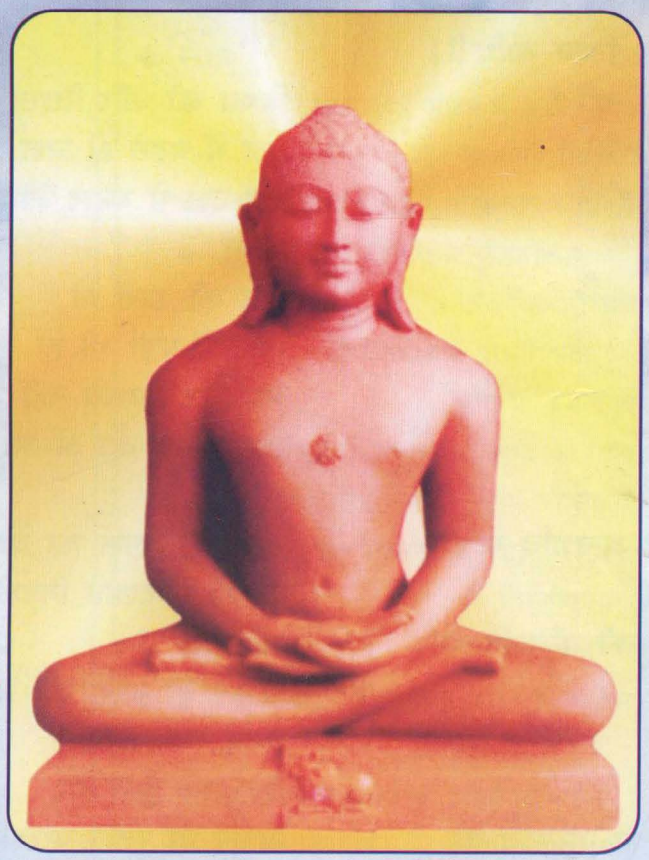

श्री आदिनाथ दि. जैन मन्दिर, पथरिया
(दमोह, म.प्र.) में विराजमान
भगवान् ऋषभदेव की भव्य प्रतिमा

भाद्रपद-आश्विन, वि.सं. 2066 सितम्बर, 2009

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल्य 15/

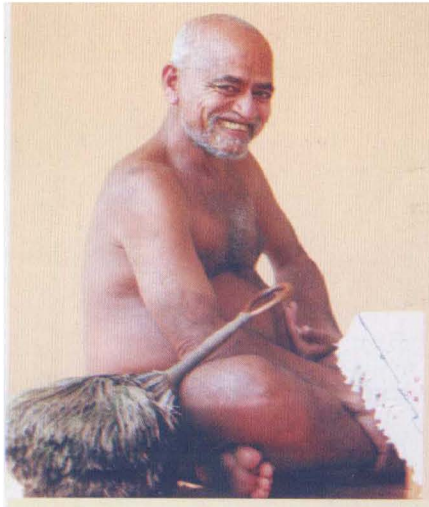

करुणारस और शान्तरस में भेद

आचार्य श्री विद्यासागर जी

करुणा की दो स्थितियाँ होती हैं-
एक विषय लोलुपिनी
दूसरी विषय-लोपिनी, दिशा-बोधिनी।
पहली की चर्चा यहाँ नहीं है
चर्चा-अर्चा दूसरी की है!
'इस करुणा का स्वाद
किन शब्दों में कहूँ!
गर यकीन हो
नमकीन आँसुओं का
स्वाद है वह!'
इसीलिए
करुणा रस में
शान्त-रस का अन्तर्भाव मानना
बड़ी भूल है।
उछलती हुई उपयोग की परिणति वह
करुणा है
नहर की भाँति!
और
उजली-सी उपयोग की परिणति वह
शान्त रस है
नदी की भाँति!
नहर खेत में जाती है
दाह को मिटाकर
सूख पाती है, और
नदी सागर को जाती है
राह को मिटाकर
सूख पाती है।

विषय को और विशद करना चाहूँगा-
धूल में पड़ते ही जल
दल-दल में बदल जाता है
किन्तु,
हिम की डली वो
धूलि में पड़ी भी हो
बदलाहट सम्भव नहीं उसमें
ग्रहण-भाव का अभाव है उसमें।
और
जल को अनल का योग मिलते ही
उसकी शीतलता मिटती है
और वह
जलता है, ओरों को जलाता भी!
परन्तु,
हिम की डली को
अनल पर रखने पर भी
उस की शीतलता मिटती नहीं है
और वह
जलती नहीं, न जलाती औरों को।
लगभग यही स्थिति है
करुणा और शान्तरस की।

मूकमाटी (पृष्ठ १५५-१५६) से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि. नं. UPHIN/2006/16750

सितम्बर 2009 मासिक वर्ष 8, अङ्क 9

जिनभाषित

सम्पादक
प्रो. रतनचन्द्र जैन

◆

कार्यालय
ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा
भोपाल- 462 039 (म.प्र.)
फोन नं. 0755-2424666

◆

सहयोगी सम्पादक
पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया, मदनगंज किशनगढ़
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती', बुरहानपुर

◆

शिरोमणि संरक्षक
श्री रतनलाल कँवरलाल पाटनी
(मे. आर.के.मार्बल)
किशनगढ़ (राज.)
श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर

◆

प्रकाशक
सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा-282 002 (उ.प्र.)
फोन : 0562-2851428, 2852278

◆

सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक	5,00,000 रु.
परम संरक्षक	51,000 रु.
संरक्षक	5,000 रु.
आजीवन	1100 रु.
वार्षिक	150 रु.
एक प्रति	15 रु.

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

अन्तस्तत्त्व

पृष्ठ

- **काव्य** : करुणारस और शान्तरस में भेद : आचार्य श्री विद्यासागर जी — आ.पृ. 2
- **कविता** : इस तरह : मुनि श्री क्षमासागर जी — आ.पृ. 3
- मुनि श्री योगसागर जी की **कविताएँ** — आ.पृ. 4
- **सम्पादकीय** : असंजदं ण बंदे — 2
- **प्रवचन** : कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्र का स्वरूप - (तृतीय अंश) : आचार्य श्री विद्यासागर जी — 5
- **लेख**
  - जैनकर्म सिद्धान्त (गतांक से आगे) : स्व० पं० मिलापचन्द्र जी कटारिया — 8
  - दुलार के साथ रखें सार्थक नाम : डॉ० ज्योति जैन — 10
  - मांसाहार एवं पैशाचिक बुद्धिहीनता : डॉ० किशोरीलाल जी वर्मा — 11
  - जैनदर्शन की वर्तमान में प्रासंगिकता : डॉ० पारसमल जैन — 14
  - तत्त्वार्थसूत्र में प्रयुक्त 'च' शब्द का विश्लेषणात्मक विवेचन (सप्तम अंश) : पं० महेशकुमार जैन — 16
  - अतिशय क्षेत्र मदनपुर का वास्तु वैभव : पं० विमलकुमार जैन सोंरया — 20
- **जिज्ञासा-समाधान** : पं. रतनलाल बैनाड़ा — 24
- **ग्रन्थ समीक्षा** : 'मैं तुम्हारा हूँ' : मुनि क्षमासागर जी : प्रो० महेश दुबे — 27
- **काव्य** : स्वयम्भूस्तोत्र का हिन्दीपद्यानुवाद : पं० निहालचन्द्र जैन — 7
- **कविता** : काँच के घट हम : मनोज जैन 'मधुर' — 23
- **समाचार** — 4, 13, 19, 26, 28, 29, 30, 31
- **'जिनभाषित'** के नये आजीवन सदस्य — 32

लेखक के विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
'जिनभाषित' से सम्बन्धित समस्त विवादों के लिये न्यायक्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

अस्संजदं ण बंदे

पूज्य आचार्य समंतभद्र स्वामी ने अपने प्रथम श्रावकाचार ग्रंथ में पारमार्थिक (सच्चे) देव शास्त्र गुरु के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन अथवा धर्म कहा है। उसके विपरीत मिथ्या देव शास्त्र गुरु की मान्यता को मिथ्या-दर्शन अथवा अधर्म कहा है। उन्होंने सच्चे गुरु का लक्षण बताया है-

विषयावशातीतो निरारंभोऽपरिग्रहः।
ज्ञानध्यान तपो रक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते॥

जो विषयों की आशा के वश में नहीं हैं, आरंभ व परिग्रह से रहित हैं, जो ज्ञान, ध्यान व तप में सर्वदा लीन रहते हैं, वे सच्चे गुरु होते हैं। उक्त लक्षण से विपरीत आचरण करनेवाले गुरु कुगुरु कहे जाते हैं। रत्नकरण्ड-श्रावकाचार में सच्चे गुरु का सकारात्मक लक्षण बताने के पश्चात् आगे तीन स्थानों पर मिथ्या आचरणवाले मिथ्यागुरु की विनयादि करने को भी सम्यग्दर्शन का दोष बताया है। अमूढ़दृष्टि अंग के वर्णन में मिथ्यादर्शन एवं मिथ्यादृष्टियों की मन-वचन-काय से प्रशंसा-वंदना करना मूढ़दृष्टि दोष है। गुरुमूढ़ता में लिखा है-

सग्रंथारंभहिंसानां संसारावर्तवर्तिनाम्।
पाखण्डिनां पुरस्कारो ज्ञेयो पाखण्डिमोहनम्॥

आरंभ, परिग्रह एवं हिंसाकार्य में सलग्न होनेवाले गुरु संसार में रूलाने वाले होते हैं, उनकी पूजा आराधना सत्कारादि करना गुरुमूढता है। पुनः लिखा है कि-

भयाशास्नेहलोभाच्च कुदेवाऽगमलिंगिनाम्।
प्रणामं विनयं चैव न कुर्युः शुद्धदृष्टयः॥

अन्य ग्रंथों में सम्यग्दर्शन के दोषों में ६ अनायतन भी गिनाए हैं। मिथ्या देव, शास्त्र, गुरु और उनके उपासक अनायतन हैं, इनसे संबंध रखना सम्यग्दर्शन को दूषित करता है।

सच्चे गुरु की भक्ति नहीं करना जैसे सम्यग्दर्शन का दोष है, वैसे ही मिथ्या गुरु की भक्ति करना भी सम्यग्दर्शन का दोष है। मिथ्या देव, शास्त्र, गुरु की भक्ति से हमारा अगृहीत मिथ्यादर्शन तो पुष्ट होता ही है, साथ ही मिथ्यात्व की परम्परा को भी पोषण मिलता है।

दिगम्बरजैनधर्म की तीर्थंकर-सदृश प्रभावना करनेवाले आचार्य कुंदकुददेव दंसणपाहुड में लिखते हैं-

अस्संजदं ण बंदे वच्छविहीणोवि सो ण वंदिज्ज।
दुण्ण वि होंति समाणा एगो वि ण संजदो होदि॥ २६॥

असंयमी को नमस्कार नहीं करना चाहिए और जो वस्त्ररहित होकर भी असंयमी है, वह भी नमस्कार के योग्य नहीं है। ये दोनों ही समान है, दोनों में एक भी संयमी नहीं है।

हमें विचार करना है कि सयंमी कौन होते हैं और असंयमी कौन? मुनि महाराज पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रियविजय, षडावश्यक एवं सात अन्य मूलगुणों का पालन करते हैं अतः वे संयमी होते हैं। महाव्रतों के पालन से सकल संयम होता है और अणुव्रतों के पालन से देश संयम होता है। मुनि त्रस व स्थावर दोनों प्रकार के जीवों की हिंसा के त्यागी होने से अहिंसा महाव्रत एवं सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग करने से अपरिग्रह महाव्रत के धारक होते है। यदि मुनिराज मोबाइल, फोन, लैपटाप आदि वस्तुएँ रखते हैं और उनका तथा कूलर, पंखा आदि का प्रयोग करते हैं, तो वे असंयमी हो जाते हैं। मोबाइल फोन, लैपटाप, कूलर आदि उपकरण नहीं, परिग्रह हैं। उपकरण संयम की साधना में आत्मा का उपकार करनेवाले केवल तीन ही होते हैं- पीछी, कमण्डल और शास्त्र। भगवती-आराधना में मुनि के उपकरण के बारे में लिखा हैं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संजमसाधणमेत्तं उवधिं मोत्तूण सेसयं उवधिं।
पजहदि विसुद्धलेस्सो साधू मुत्तिं गवेसंतो॥ १६४॥

मुक्ति को खोजनेवाला विशुद्ध लेश्या से युक्त साधु, संयम के साधनमात्र परिग्रह को छोड़कर शेष परिग्रह को प्रकर्ष अर्थात् मन वचन काय से त्याग देता है।

आचार्य कुन्दकुन्द ने असंयमी अथवा संयम को दूषित करनेवाली निरंकुश चर्या अपनाने वाले मुनियों की वंदना नहीं करने का निर्देश इसलिए दिया है कि हमारे द्वारा ऐसे मुनियों की वंदना करने से उन मुनियों को उस शिथिलाचरण में प्रोत्साहन मिलता है और ऐसे धीरे-धीरे उनका शिथिलाचारण परम्परा बन जाता है। ऐसे ही दिगम्बरसंघ में से पृथक होकर शिथिलाचार का आश्रय लेने वाले साधुओं ने श्वेताम्बर संघ की स्थापना कर दी और अपने शिथिलाचार के समर्थन में आगम की भी रचना कर दी। कालांतर में यापनीयसंघ, भट्टारक सम्प्रदाय आदि भी शिथिलाचारी साधुओं की ही उपज हैं। आचार्य कुंदकुंद के समय में भी शिथिलाचारी मुनि थे और उन्होंने अपने पाहुड़ग्रंथों में ऐसे कुमुनियों की भरपूर भर्त्सना की है।

कुछ लोग यह तर्क देते हैं कि शास्त्र के स्थान पर लैपटाप का उपयोग किए जाने में क्या हानि है? बल्कि लाभ है, क्योंकि शास्त्र सुरक्षित रहते हैं और तुरंत संदर्भ प्राप्त हो जाता है। लगता है ऐसा तर्क देने वालों को आगम का ज्ञान नहीं है। मुनिराज उपदेश दे सकते हैं, किंतु स्वयं लैपटाप रखकर उसका उपयोग नहीं कर सकते। उसके उपयोग में अग्निकायिक स्थावर जीवों की हिंसा होती है, जिसके मुनिराज पूर्णतः त्यागी हैं। लैपटाप तथा मोबाइल का संचालन आरंभ है। दूसरा वह कीमती वस्तु परिग्रह है, जिसके मुनिराज त्यागी हैं। आ० कुन्दकुन्द ने सूत्रप्राभृत की गाथा १७ में लिखा है कि मुनि महाराज बाल के अग्रभाग की अणी के बराबर भी परिग्रह का ग्रहण नहीं करते हैं। अतः उन्हें योग्य श्रावक के द्वारा दिये हुए अन्न का हस्तरूप पात्र में भोजन करना चाहिए और वह भी एक ही स्थान पर। आगे गाथा १८ में कहा है कि यदि नग्नमुद्रा के धारक तिलतुषमात्र परिग्रह भी अपने हाथों में ग्रहण करते हैं, तो निगोद जाते हैं।

वालग्गकोडिमित्तं परिगहगहणं ण होई साहूणं।
भुंजेइ पाणिपत्ते दिण्णण्णं इक्कठाणम्मि॥ १७॥
जहजायरूवसरिसो तिलतुसमित्तं ण गिहदि हत्थेसु।
जइ लेइ अप्पबहुयं तत्तो पुण जाइ णिग्गोदं॥ १८॥

इस लैपटाप की रक्षा की, खराब होने पर सुधारने की चिंता मन को संतापित करेगी, वे मुनिराज निर्विकल्प कैसे रह सकते हैं? मोबाइल फोन भी स्पष्ट परिग्रह है तथा इसके उपयोग में भी स्थावरहिंसा है। इसके अतिरिक्त इन कीमती उपकरणों के लिए श्रावकों से याचना करने का दोष है। क्षेत्रमर्यादा का भंग है व मोह का प्रतीक है। कूलर के प्रयोग से स्पर्शन-इन्द्रिय-विजय मूलगुण का भंग है और परीषह का सावद्य-प्रतिकार करने से परीषहसहनगुण भी नहीं रहता है। अपरिग्रह महाव्रत का भंग तो है ही, साथ ही वायुकायिक, अग्निकायिक एवं जलकायिक जीवों के विघात से अहिंसा महाव्रत का भी भंग होता है। इन भौतिक उपकरणों का प्रयोग आरंभ है और इनका संग्रह परिग्रह है। आरंभ परिग्रह के दोष, मूलगुणों के भंग का दोष, अहिंसा महाव्रत एवं अपरिग्रह महाव्रत के भंग का दोष होने से इन भौतिक उपकरणों का प्रयोग करनेवाले सच्चे गुरु नहीं हो सकते। संयम का विघात होने से वे असंयमी हो गए। अतः आचार्य कुन्दकुन्द की आज्ञा के अनुसार ऐसे असंयमी मुनियों को प्रणाम एवं विनय नहीं करना चाहिए।

चारित्रचक्रवर्ती आचार्य शांतिसागर जी महाराज ने सम्पूर्ण आरंभ परिग्रह के त्याग का उच्च आदर्श स्थापित किया था। बाहर से दिगम्बर भेष धारण करते हुए यदि लैपटाप, कूलर, मोबाइल फोन आदि का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संग्रह एवं उपयोग किया जाए तो यह वस्त्रपात्र के संग्रह-उपयोग से कम दोषपूर्ण नहीं कहा जा सकता।

अभी ८ फरवरी २००९ को आचार्य सुकुमालनंदी जी ने अहमदाबाद में एक क्षुल्लक जी को मुनिदीक्षा प्रदान की थी। उन्होंने उस समय मुनि के मूलगुणों के बारे में समझाया। उसका जो वर्णन **वर्धमानसंदेश** महावीर-जयंती-विशेषांक के पृष्ट २३ पर छपा है वह है- ''आचार्य श्री ने २८ मूलगुण का विस्तृत स्वरूप समझाते हुए नवीन मुनि को रुपयापैसा, मोबाइल आदि भौतिक उपकरणों से दूर रहने व निरंतर स्वाध्याय में तल्लीन होने का उपदेश दिया।'' जो मुनि महाराज शेविंग के लिए २-४ रुपए की ब्लेड का भी उपयोग नहीं करके हाथ से बाल उखाड़ते हैं, वे कैसे कीमती उपकरण रखेंगे और प्रयोग करेंगे? पूर्ण अपरिग्रह, निरारंभ एवं अहिंसा दिगम्बर जैन मुनि के प्राणवत् हैं। भौतिक प्राणों के जाने पर भी मुनिराज अहिंसा व अपरिग्रह महाव्रत का भंग नहीं करते।

मेरा उद्देश्य किसी व्यक्तिविशेष की आलोचना करना नहीं है। मैं तो केवल आगम की बात बताना चाहता हूँ। मेरा तो सभी मुनिराजों से करबद्ध निवेदन है कि वे अर्हंत भगवान् के समान इस साधु परमेष्ठीपद की गरिमा बनाए रखें और इस की अवमानना नहीं करें। मुझे अत्यधिक वेदना है कि आज मुनिराजों के आचरण में जो ह्रास हुआ है उसके लिए शिथिलाचार शब्द भी छोटा पड़ता है। वस्तुतः मुनि के इस चारित्रिक शैथिल्य के लिए हम श्रावक भी उत्तरदायी हैं। दिगम्बर-मुनि-संस्था पर यह संकट आया है। अधिक दुःख तो तब होता है, जब मूलगुणों को खण्डित करते हुए भी कतिपय साधु मन में खेद का अनुभव नहीं करते हैं, बल्कि उस दोष को उचित सिद्ध करने का दुष्प्रयास करते रहते हैं। बहुत से व्यक्ति, मुनियों के शैथिल्य की पुष्टि में यह कहते है कि चतुर्थ काल के चरणानुयोग के नियम पंचम काल के मुनियों पर लागू नहीं होते हैं। वस्तुतः मुनियों के मूलगुण शाश्वत हैं। काल के अंतर से मूल गुणों में काई अंतर नहीं आता। पंचम काल के अंत तक मूल गुणों का पालन करनेवाले मुनिराज रहेंगे। अंतिम तीर्थंकर भगवान् महावीर की दिव्यध्वनि में जो चरणानुयोग की व्यवस्थाएँ निरूपित हुईं, उन्हें ही पश्चाद्वर्त्ती आचार्यों ने आगम में ग्रहण किया। षटखण्डागम, अष्टपाहुड़, प्रवचनसार, तत्त्वार्थसूत्र, मूलाचार, भगवती-आराधना आदि ग्रंथों की रचना पंचम काल में ही हुई और उन्होंने जो मुनियों की आचारसंहिता का निरूपण किया, वह तो पंचम काल के मुनियों के लिए ही किया है। पंचम काल में प्रारंभ से अब तक आगमानुकूल मूलगुणों का पालन करनेवाले महामुनिराज बराबर रहते आए हैं और आज भी हैं। अभी पंचमकाल के लगभग १८००० वर्ष बाकी हैं और तब तक भावलिंगी मुनिराजों का अस्तित्व रहेगा। हम आशा करते हैं कि मुनि महाराज और श्रावक दोनों मिलकर आगमानुकूल निर्दोष मुनिचर्या का संरक्षण कर दिगम्बरजैन मुनिधर्म पर आए और आगे आनेवाले संकट को दूर करने में पूर्ण दृढ़ता एवं संकल्प के साथ प्रयत्नशील बनें रहेंगे। इस विषम काल में वे वीतरागी महामुनिराज अपने निर्दोष संयम और आत्मानुभूति के द्वारा बिना कहे ही अपनी चर्या से अहिंसा, अपरिग्रह एवं अनेकांत के सार्वकालिक, सर्वोदयी सिद्धातों की जन-जन को शिक्षा देते रहेंगे।

मूलचंद लुहाड़िया

श्री निर्मल जैन अहिंसा एवार्ड से सम्मानित

शाकाहार प्रचार हेतु समर्पित सतना (म०प्र०) के प्रसिद्ध सामाजसेवी, साहित्यकार पं० निर्मल जैन को जलगाँव (महाराष्ट्र) में **श्री आचार्य हस्ती अहिंसा एवार्ड** से सम्मानित किया गया। विगत २२ वर्षों से अहिंसा एवं शाकाहार के प्रचार-प्रसार में संलग्न श्री निर्मल जैन को यह एवार्ड प्रसिद्ध विदुषी साध्वी महासती मणिप्रभा जी के सान्निध्य में प्रदान किया गया।

सुधीर जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृतीय अंश

कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्र का स्वरूप

आचार्य श्री विद्यासागर जी

श्री सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर (दमोह, म.प्र.) में मई २००७ में आयोजित श्रुताराधना शिविर में १४ मई २००७ के द्वितीयसत्र में विद्वानों की शंकाओं के समाधानार्थ आचार्यश्री द्वारा किये गये प्रवचन का तृतीय अंश प्रस्तुत है।

जब व्यक्ति रागद्वेष से युक्त रहेगा तो वह सत्य का उद्घाटन नहीं कर सकता। आज तो विद्वानों की आमदनी और आजीविका श्रावकों पर निर्भर है, तो वह व्यक्ति प्रवचन में स्पष्ट क्या बोलेगा? उपकरणों के माध्यम से यदि कोई व्यक्ति व्यवसाय करेगा, तो वह षट्कर्म के अन्तर्गत नहीं आयेगा। हम सब कुछ देख रहे हैं। आगम की बात कहते हैं, तो चुभ जाती है। लेकिन हम क्या करें। जहाँ पर काँटा लगा हुआ है, वहाँ पर थोड़ा सा हाथ रखते ही वह चुभ जाता है। हम नहीं चुभोते हैं। जो भीतर चुभा हुआ है वह चुभता है। हम इसलिए छू रहे हैं कि कहाँ पर दर्द हो रहा है, हम देख लेते हैं। महाराज, दर्द पूरे पैर में हो रहा है। आप छू लेते हैं। नहीं, नहीं, पूरे पैर में काँटा नहीं लगा है भैया! बिल्कुल नहीं, नस में वह लगा हुआ है और नस ढकी हुई है। इसलिए पैर सूज गया है। तो क्या खा गया है वह? रोष खा गया है वह। क्या कोई रोष खाता है?

पैर रोष खा गया है, इसलिए इतना मोटा हो गया है। कहीं भी पिन दर्द नहीं देता है। उसी प्रकार इन शब्दों के माध्यम से किसी को पिन कर देते हैं और दर्द हो रहा है तो सहन कर लो। निकल जायेगा काँटा, नहीं तो पैर कटाना पड़ेगा। हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं- आपके पैर सलामत रहें और काँटा निकल जाये। थोड़ा तो सहन कर लो। बहुत दिन से काँटे को पाला है। काँटे से काँटा निकलता है तो क्या करें। पाँव को ज्यादा इधर-उधर कर दोगे, तो ये काँटा भीतर कहीं गल न जाये। थोड़ा सा आप लोग सहन कर लो। सम्यक्त्ववर्धनी की ओर किसी की दृष्टि ही नहीं गयी। यह कहाँ का प्रकाशन है? कहाँ से चालू होता है? यह कहाँ का शिविर है? कौन आ रहे हैं? कैसा प्रबंध है? यह आ जाता है। अरे! इन सब बातों के साथ क्या है? फिर भी आप लोग आते हैं तो आशीर्वाद तो देना ही पड़ता है। लेकिन हम सोच-विचार कर देते हैं। यह भी ध्यान रखो। स्पष्ट वक्ता हूँ, क्योंकि आगम में यही कहा है। **'प्रस्पष्टमिष्टाक्षरः'** (आत्मानुशासन ५) महाराज! आपके शब्द मीठे तो नहीं लग रहे हैं। बात ऐसी है कि ज्वर के कारण जिसका मुख कड़वा हो जाता है, तो उसको मिश्री भी खाने को दे दो, तो वह कड़वी लगती है। तो हम क्या करें। हम आपको मिश्री दे रहे हैं और आप उसको निबोली कह दो, तो हम क्या करें। हम इसलिए दे रहे हैं कि एक बार इसको खा लो, तो स्वस्थ हो जाओ, लेकिन ज्वरग्रस्त व्यक्ति को मिश्री भी कड़वी लगती है।

जिसको सर्प काट जाता है उसको निबोली भी मीठी लगती है। हम क्या करें, उसको जीवित रखने के लिए कितना जहर फैला है! कितना विषाक्त है! यह जानने के लिए निबोली ही खिलाई जाती है, ताकि वह जहर को जहर मान सके। इसलिए आचार्यों ने कहा **'सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ'** (स्वयंभूस्तोत्र १२/३) पंडित जी ऐसा लिखा गया है। सम्यक्त्ववर्धनी क्रिया के साथ सावद्य लेश होता है और पुण्य अधिक होता है, साथ ही संवर-निर्जरा भी होती है, अपने दिमाग से सोचो।

सावद्य में भी कमी आ जाये। दुकान खोलना अनिवार्य है। दुकान खोलने के लिए, तो किराया देना पड़ेगा। जब आमदनी चाहोगे तो कुछ किराया पेशगी देना ही पड़ेगा। देना तो है लेकिन ज्यादा न देना पड़े। दुकान देख लो, हाँ, तुम्हें तो बॉर्डर पर भी चाहिए। मेन बाजार में भी चाहिए, दो खण्ड (मंजिल), चार खण्ड की भी चाहिए। सब कुछ चाहिए तो कुछ ज्यादा देना ही पड़ेगा। तो पगड़ी रख देते हैं।

'सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ' अब बता दो, यह दुकान अच्छी है न, बहुत बढ़िया, आपकी कृपा है कि आपका पुरुषार्थ है। महाराज! आपने आशीर्वाद दिया है न! दुकान कहाँ चल रही है, बीच बाजार में, सड़क पर नहीं। बीच बाजार का अर्थ है बिल्कुल मेन रोड पर। सब लोगों की दृष्टि वहीं पर जाती है। अब दुकान अच्छी चल रही है। इसलिए किराया चौगुणा भी देना पड़े, तो कोई बात नहीं। ३१ तारीख को देना होता है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो हम १ तारीख को ही दे देते हैं। बुला कर भी दे देते हैं। जाकर के भी दे देते हैं। अभी क्यों दे रहे हो? नहीं, आप तो ले जाओ। इसी प्रकार सम्यक्त्व की वर्धनी हो रही है। तो एक और सही कर्म का बंध, उससे क्या हानि होनेवाली है। जो कहते हैं कि देव-शास्त्र-गुरु की पूजा करने से साम्परायिक आस्रव, बंध होता है, तो इनका कथन करना बिल्कुल गलत है। आप अध्ययन करिये, लिखा तो यही है, लेकिन लकीर के फकीर न बनो। अर्थ भी कैसा, क्या निकाला जा रहा है, यह भी देखो। इसीलिए लिखा गया होगा। अर्थ की ओर दृष्टि रखो। इस तरह स्वाध्याय करते वर्षों हो गये। कितने लोगों का अहित हो गया। स्वयं का अहित हो गया तो हो गया। साथ में कितने व्यक्तियों का अहित हो गया। कितने निष्ठावान् व्यक्तियों की निष्ठा को क्षति पहुँच गई होगी। कई व्यक्तियों ने व्रत छोड़े हैं इस प्रकार के प्रवचन से। ध्यान रखो, गुरु महाराज के मुख से हमने कई बार सुना है, बोलने में तो इस प्रकार की बोली आ जाती है, लेकिन सोचते हैं, तो भैया! यह ठीक नहीं है। **वे कहते हैं कि जो बंध का कारण है वह संवर और निर्जरा का कारण हो ही नहीं सकता। यह पेटेन्ट वाक्य है। कारण-कार्य की व्यवस्था समझते नहीं हैं। न्याय के ग्रन्थ कभी देखे नहीं। कुछ भी पढ़ा नहीं और बोलना प्रारंभ कर दिया।** आपको अच्छा लगे या न लगे। अब हमने किसी का नाम लिये बिना इस ढंग से प्रचार-प्रसार करना प्रारंभ कर दिया है। जिस व्यक्ति के यहाँ कारण-कार्य की व्यवस्था में गड़बड़ी है, उसे समझ करके आप पढ़ो और सुनो। जो व्यक्ति कारण-कार्य की व्यवस्था की जानकारी नहीं लेता, वह व्यक्ति न स्वहित कर रहा है और न परहित कर रहा है। न युग के लिए करता है। यह आर्ष मार्ग की प्रभावना है ही नहीं। एक पंथ वह है, जो यह भी नहीं समझता कि देव-शास्त्र-गुरु कौन हैं और उन देव-शास्त्र-गुरु को पूजना चाहिए या नहीं। भैंरों जी को पूजना चाहिए या नहीं, किसको पूजना चाहिए, किसको नहीं, इसका ज्ञान नहीं। एक व्यक्ति यह भी नहीं जानता कि अठारह दोष क्या होते हैं?

एक व्यक्ति तत्त्व को लेकर चल पड़ा। क्या है यह सब? साहित्य पढ़ते हैं, सुनते हैं, परिवर्तन देखते हैं तो ऐसा लगता है कि ठीक लिखा है आगम में रत्नत्रय बहुत दुर्लभ है। सम्यग्दर्शन प्राप्त करना बहुत दुर्लभ है। न काल के ऊपर निर्भर होता है और न ही इस प्रकार की कोरी बातें करने से प्राप्त होता है। सम्यग्दर्शन की यह भूमिका है ही नहीं। आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने कहा कि जिस तत्त्वचर्चा में वाद-विवाद, विसंवाद होते हैं, वह तत्त्वचर्चा ही नहीं है। यह क्या है, लड़ रहे हैं, भिड़ रहे हैं, कोर्ट तक पहुँच रहे हैं। कोर्ट को न निश्चय सम्यग्दर्शन मालूम है, न अठारह दोषों से रहित भगवान् का स्वरूप मालूम है। न यह सब मालूम है। पहले पंचायत होती थी और पंचों के माध्यम से ये सब कार्य होते थे। आज एकदम सारे-के-सारे पंच बन चुके हैं। प्रजातंत्र है तो कौन पंच, कौन सरपंच, सब के सब पंच हैं। किसी को किसी से डर है ही नहीं। हम आपकी किताब को लेकर देख लेंगे। दूसरी किताब दूसरी तरफ से प्रकाशित होकर आ जाएगी। लीजिये, पढ़िये महाराज, ऐसा-ऐसा लिखा है। हमें सिखा रहे हैं, हमें पढ़ा रहे हैं। हम हमेशा पढ़ते रहते हैं। इसमें तो ज्ञानवर्धन होता है। आप कहाँ पर कैसे लिख रहे हैं, देखने से तो सब मालूम पड़ जाता है। इससे ज्ञानवर्धन हो जाता है। कोश देख रहे हैं। यह कोश कहाँ का है। अरे! कोश तो कोश है। हमें इससे क्या मतलब है। इन सबके माध्यम से ज्ञान हो जाता है कि यह बात बिल्कुल कटु सत्य है। सत्य हमेशा कड़वा ही होता है। आप लोग मीठे के आदी हो गये हैं, इसलिए ऐसा होता है। सुनना तो पड़ेगा। अभी दूसरा सत्र है। अभी बहुत सत्र बाकी हैं। आज प्रवचन के बदले में चर्चा में ही प्रवचन होता जा रहा है। होने दो, और कोई शंका तो नहीं? न ही कोई अदेव, न ही कोई सुदेव, न ही कोई कुदेव, न ही कोई कल्पवासी और न ही कोई अहमिन्द्र, न कोई पद्मावती, न क्षेत्रपाल, यह कोई विषय ही नहीं है। रत्नकरण्डश्रावकाचार उठा कर देख लो। पैंतीस श्रावकाचार हैं, उनमें भी यही कहा गया है। 'समयसार' के शिविर बहुत हो गये, अब समन्तभद्र स्वामी की कृति रत्नकरण्डश्रावकाचार को भी एक बार उठा करके देखो। आचार्यश्री ज्ञानसागर महाराज जी ने रत्नकरण्डश्रावकाचार को **'रत्नत्रय की स्तुति'** यह नाम दिया है। वास्तव में रत्नत्रय की स्तुति है। सामान्य से प्रथम अध्याय में सम्यग्दर्शन का सर्वाङ्गीण चित्रण किया गया है। वे समनतभद्र महाराज सामने खड़े होकर प्रश्न करनेवाले और 'आप्तमीमांसा' लिखनेवाले दिग्गज विद्वान् थे, जिनके ऊपर बड़ी-बड़ी टीका, उपटीका आदि लिखी गयी हैं। अष्टसहस्री जैसा ग्रन्थ है, जो आठ हजार श्लोकप्रमाण है। उसके लिए यह मंगलाचरण के रूप में लिखा गया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, ऐसा सुनने में आता हे। तत्त्वार्थसूत्र की गंधहस्ति-महाभाष्य नाम की टीका समन्तभद्र स्वामी ने लिखी है, जिसका मंगलाचरण एक सौ चौदह- ११४ कारिकाओं में किया गया। उन कारिकाओं से आप्तमीमांसा नामक ग्रन्थ बन गया। यदि वह पूरा भाष्य ग्रन्थ होगा तो कितना विशालकाय ग्रन्थ होगा, विचारणीय है। ऐसे समन्तभद्र महाराज ने परमार्थभूत देव-शास्त्र-गुरु के श्रद्धान को व्यवहारसम्यग्दर्शन कहा है। व्यवहार तो सराग है। सराग है तो ऐसे है, ऐसे कैसे है? ऐसे अपने आप में निर्णय करोगे तो यह ठीक नहीं होगा, यह ध्यान रखना। गुरु के विषय में परमार्थभूत विशेषण दिया है-

विषयाशावशातीतो, निरारम्भोऽपरिग्रहः।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते॥ र.श्रा.१०॥

जो पंचेन्द्रियों के विषयों की आशा से रहित है, आरंभ और परिग्रह से रहित है और ज्ञान, ध्यान तथा तप में लीन है, वह सच्चा गुरु प्रशंसनीय है। विषय-कषायों से हमेशा दूर रहो, ज्ञान ध्यान तप में सदा लीन रहो और दुनियादारी के कार्यों से दूर रहो। यदि दुनियादारी के कार्यों में लगोगे तो गुरु की संज्ञा में नहीं आओगे। यह कहा है समन्तभद्र महाराज जी ने। दुनिया के कार्यों के लिए यह श्रमणत्व नहीं है। समय मिलेगा, तो हम अवश्य इस स्थिति को स्पष्ट करेंगे। क्या युग है, कब से आ रहा है, कैसा आ रहा है, क्या बोध दिया जा रहा है। कोई इस ओर गड़बड़ कर रहा है, कोई उस ओर गड़बड़ कर रहा है। भरे बाजार में ऐसा हो रहा है। सड़क का मामला है। ज्यादा माल लाकर के सब देते हैं। ज्यादा बिक जाए इस लोभ से बाजार के दिन ऐसा करते हैं।

(शेष अगले अंक में)

'श्रुताराधना (२००७)' से साभार

स्वयम्भूस्तोत्र : हिन्दीपद्यानुवाद

प्राचार्य पं० निहालचंद जैन, बीना

श्री अजितनाथ स्तुति

विजय अनुत्तर से आकर अवतरित
परिजन जन दिव्य प्रभा से पुलकित
हर्षित मुख है सहज बाल-क्रीडा में
भूमण्डल पर अजेय, शक्ति-संधारक
हे लोकोत्तर मनुज तुम्हारा
बंधुवर्ग ने अजित नाम सार्थक रक्खा था॥ ६॥
सत्पुरुषों के समर्थ नायक,
अनेकान्त सर्वोदय-शासन,
कभी परास्त नहीं हो पाया
पाखण्डी मायावी हथकण्डों से।
परम पवित्र लोक मंगल है
मनोरथों का सिद्धि प्रदाता।
अजित नाम मन्त्रों सा सार्थक,
बना हुआ जन-जन का ध्याता॥ ७॥
कर्मरजों से मुक्त, धवल हो
गणधर देवों से अर्चित हो,
तेरी वाणी, जन मानस को उपकृत करती,
हृदय-कमल को पुलकित करती,
मेघावरण मुक्त ज्यों दिनकर
विकसित करता है सरोज को॥ ८॥
अजित प्रभू के धर्मतीर्थ श्रुत में,
प्रवेश कर संसारी जन
भव भव दुःख से उपरत हो जाते।
जैसे चन्दन सम शीतल गंगा-हृद में,
आकण्ठ डूब गज
सूर्यताप की पीड़ा से बच जाते॥ ९॥
परमागम विज्ञान के द्वारा
कल्मष कषाय को नष्ट किया।
शत्रुमित्र में समदृष्टि हे आत्मस्वरूपी!
तुमने स्वयं को जीत लिया।
अनन्तचतुष्टयधारी प्रभुवर!
आर्हन्त्य-लक्ष्मी ज्ञान-विभूति का वर दो॥ १०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गतांक से आगे

जैन कर्म सिद्धान्त

स्व० पं० मिलापचन्द्र जी कटारिया

मतलब यह है कि कार्मण वर्गणा यह एक पुद्गल स्कन्ध की जाति विशेष है, जो सारे लोक में व्याप्त है। जहाँ भी जीव के राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ मोहादिभाव पैदा हुए कि वह कर्मरूप बनकर आत्मा के प्रदेशों के साथ मिल जाती है। इसे ही जैनधर्म में कर्मबन्ध होना बताया है। वे ही बँधे हुए कर्म अपने उदयकाल में इस जीव को अच्छा-बुरा फल देते हैं और इसे संसार में रुलाते हैं। जैसे अग्नि से तप्त लोहे का गोला पानी में डालने से पानी को अपनी तरफ खींचता है, उसी तरह कषायभावों से ग्रसित आत्मा कर्मवर्गणाओं को अपनी ओर खींचकर उनसे आप चिपट जाता है। जैसे पी हुई मदिरा कुछ देर बाद अपना असर पैदा करके पीनेवाले को बावला बना देती है, उसी तरह बाँधे हुए कर्म कालांतर में, जब अपना फल देते हैं, तो उससे जीव सुखी, दुखी, रोगी, निरोगी, सबल, निर्बल, धनी, निर्धन आदि अनेक अवस्थाओं को प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार जैनधर्म में जीवों की विचित्रता के कारण उनके अपने बाँधे हुए कर्म माने गये हैं। जैसे बीज के बिना धान्य नहीं होते, वैसे ही कर्मों के बिना जीवों की नाना प्रकार की अवस्थायें नहीं हो सकती हैं। कर्मों के अस्तित्व की सिद्धि के लिये यह एक हेतु है। अन्यथा कर्म इतने सूक्ष्म हैं कि हम छद्मस्थ उनका कदापि प्रत्यक्ष नहीं कर सकते हैं। जिस प्रकार पुद्गल के परमाणु हमारे इन्द्रियगोचर नहीं हैं, परन्तु उनसे बने स्कन्ध को देखकर हमें परमाणु का अस्तित्व मानना पड़ता है। इसी तरह कर्मों के शुभाशुभ फल को प्रत्यक्ष देखकर परोक्षभूत कर्मों का अस्तित्व भी मानना होगा।

प्रश्न : पुष्पमाला, चन्दन, स्त्री आदि प्रत्यक्ष सुख के कारण हैं और सर्प, कंटक, विषादि प्रत्यक्ष दुःख के कारण हैं। इन प्रत्यक्ष हेतुओं को छोड़कर सुख-दुःख के परोक्ष कारण कर्मों को क्यों माना जावे?

उत्तर : पुष्पमाला आदि एकांततः सभी जीवों को सुख के कारण नहीं होते हैं। शोकाकुलित जीवों को ये ही चीजें दुःख का कारण भी देखी जाती हैं। इसी तरह विषादि भी सभी को दुःख का कारण नहीं होते हैं। किन्हीं-किन्हीं रोगियों को विष का सेवन आरोग्यप्रद होकर सुख का कारण भी हो जाता है। खादी का बना मोटा चादर गरीब के वास्ते हर्ष का कारण होता है, वही शालदुशाला ओढ़नेवाले राजपुत्र के लिये विषाद का कारण बन जाता है। इस प्रकार समान सामग्री हो, तो भी सबको समान सुख-दुःख नहीं होते हैं। इस तरतमता को देखने से यही निश्चय होता है कि सुख-दुःख के होने में पुष्पकंटकादि से भिन्न कोई अन्य ही अदृष्ट कारण हैं और वे अदृष्ट कारण कर्म ही हो सकते हैं।

प्रश्न : कोई आदमी बुरा काम करता है उसका फल राजा देता है। इस प्रत्यक्ष फलदान को छोड़ कर उसका फल परोक्ष कर्मों के द्वारा दिया जाना क्यों माना जावे?

उत्तर : राजा अगर दण्ड देगा तो प्रगट पापों का देगा। गुप्त पापों का जिन्हें राजा जानता ही नहीं, उनका फल कौन देगा? और मानसिक पाप तो सदा ही अप्रगट हैं, उनका फल भी जीव को कैसे मिलेगा? तथा दया, दान, ध्यान आदि उत्तम कार्यों का फल भी जीव को कौन देगा? एक मनुष्य अनेक हत्या करे, तो राजा उसे प्राणदण्ड देता है, किन्तु इससे तो हत्या करनेवाले को एक ही हत्या का दण्ड मिलता है बाकी हत्याओं का दण्ड कैसे मिलेगा? अतः मानना पड़ेगा कि बाकी का दण्ड नरकगति के रूप में कर्मों से ही मिलता है।

कर्मों को सिद्धि के लिये दूसरा हेतु यह है कि जैसे चेतन की की हुई कृषि आदि क्रियाओं का फल धान्यादि की प्राप्ति है। जो भी चेतन की की हुई क्रिया होगी उसका कोई-न-कोई फल जरूर होगा। उसी तरह चेतन द्वारा की हुई हिंसा आदि पाप क्रियाओं या दया, दान आदि क्रियाओं का फल भी जरूर होना चाहिये वह फल शुभाशुभ कर्मों का जीव के बन्ध मानने पर ही बन सकेगा।

प्रश्न : जैसे कृषि क्रिया का प्रत्यक्ष फल धान्य प्राप्ति है, उसी तरह हिंसा असत्य आदि का प्रत्यक्ष फल शत्रुता, अविश्वास आदि है और दया, दान आदि का प्रत्यक्ष फल मन की प्रसन्नता यशप्राप्ति आदि है। इस प्रकार क्रियाओं का फल हम भी मानते हैं। इन दृष्टफलों को छोड़कर अदृष्टफल कर्मबन्ध क्यों माना जावे?

उत्तर : जीवकृत सभी क्रियाओं के दृष्टफल और अदृष्टफल दोनों फल होते हैं। कृषि आदि सावद्य क्रियाओं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का धान्यादि यह दृष्टफल है और पापकर्म का बन्ध होना यह अदृष्टफल है। इसी तरह दानादि का यशप्राप्ति आदि दृष्टफल है और पुण्यकर्म का बन्ध होना अदृष्टफल है। यदि कृषि आदि सावद्य क्रियाओं का धान्यप्राप्ति आदि दृष्टफल ही माना जावे, अदृष्टफल पाप बन्ध नहीं माना जावे तो सावद्य आरम्भ करनेवाले सभी जीवों को मोक्ष हो जायेगा और यह संसार जीवों से शून्य हो जायेगा।

प्रश्न : कृषि आदि क्रियायें धान्यादि प्राप्ति की इच्छा से की जाती हैं। करनेवाला पाप कमाने के अभिप्राय से उन्हें नहीं करता है, तब कर्त्ता को पाप का बन्ध भी क्यों माना जावे?

उत्तर : जैसे किसान गेहूँ का बीज बोता है। उनके साथ भूल से कोंदू का कोई बीज बोने में आ जाये तो उस कोंदू के बीज से कोंदू ही पैदा होगी। नहीं चाहने से उससे गेहूँ पैदा नहीं हो सकते हैं। उसी तरह कृषि आदि क्रियाओं का अदृष्टफल पाप कर्मों का बंध नहीं चाहते भी पाप बंध होगा ही। जगत् में दु:खी जीव बहुत हैं और सुखी जीव थोड़े हैं। इसका भी कारण यही है कि जगत् में पापकार्यों के करनेवाले बहुत जीव हैं और पुण्यकार्यों के करनेवाले थोड़े जीव हैं। अगर कृषि आदि सावद्यारंभ का अदृष्ट-फल पापबंध नहीं होता, तो जगत में प्रचुर मात्रा में दु:खी जीव दिखाई नहीं देते। दूसरी बात यह है कि समान साधनों के होते हुए भी कृषि, व्यापार आदि करनेवालों में समान फल की प्राप्ति नहीं देखी जाती है। इसका कारण भी जीवों का अदृष्टफल पुण्य-पाप ही माना जावेगा। कारण के बिना कार्य नहीं होता है, यह नियम है। जैसे परमाणुओं से घट बनता है। यहाँ घट कार्य है, परमाणु कारण हैं। उसी तरह दृष्टफल में तरतमता देखी जाती है वह भी कार्य है, उस कारण भी पुण्य-पाप ही मानना पड़ेगा।

कर्मों की सिद्धि के लिये तीसरा हेतु यह है कि संसारी जीवों की गमनादि क्रियायें बिना शरीर के नहीं हो सकती हैं। जब कोई संसारी जीव पूर्व पर्याय को छोड़कर अगली पर्याय में जावेगा, तब पहिले का स्थूल शरीर तो छूट जायेगा और अगला स्थूल शरीर अभी प्राप्त नहीं हुआ। अन्तराल में (विग्रह गति में) उस जीव के अगर सूक्ष्म कार्मण शरीर भी नहीं माना जावेगा, तो उसके गमन का अन्य क्या कारण होगा? विग्रहगति में यदि आत्मा को बिल्कुल अशरीरी मान लिया जावे और अशरीरी होकर भी किसी नये शरीर में जन्म लेना मान लिया जावे तब; तो मुक्त जीवों का भी पुन: शरीर ग्रहण करने का प्रसंग आ उपस्थित होगा।

कर्मों की सिद्धि के लिए चौथा हेतु यह है कि जीवों के जो रागद्वेषादि भाव पैदा होते हैं, वे भाव आत्मा के निज भाव तो हैं नहीं, क्योंकि उन्हें निज भाव मानने पर सिद्धों के भी उन्हें मानने पड़ेंगे। परन्तु सिद्धों के वे हैं नहीं और यदि इन भावों को जीव के न मानकर कर्मों के मानें, तो कर्म पुद्गल हैं। अचेतन के द्वारा द्वेषादि भावों का होना सम्भव नहीं है। जैसे उत्पन्न हुई संतान न अकेली माता की है और न अकेले पिता की, किन्तु दोनों ही के संयोग से उत्पन्न हुई मानी जानी चाहिए। जीव की इस वैभाविक परिणति से भी जीव के साथ होनेवाला कर्म बंध होता है। जैसे हल्दी और चूने के के मेल से एक तीसरा ही विलक्षण लाल रंग पैदा होता है। इस लाल रंग में न हल्दी का पता लगता है और न चूने का। किसी ने कहा है-

हरदी ने जरदी तजी चूना तज्यो सफेद।
दोऊ मिल एकहि भये रह्यो न काहू भेद॥

उसी तरह अरूपी जीव के साथ रूपी कर्मपुद्गलों का मेल होकर एक ऐसी तीसरी विलक्षण दशा पैदा हो जाती है, जिसे हम जीव की वैभाविक अवस्था के नाम से पुकारते हैं। इस अवस्था में न तो जीव के असली रूप का पता पड़ता है और न पुद्गल के असली रूप का।

कर्म और आत्मा का मेल कुछ ऐसे ढंग का समझना चाहिए कि दोनों एक दूसरे में मिलकर एकस्थानीय बन जाते हैं। फिर भी दोनों का अपना-अपना स्वरूप अलग-अलग रहता है। न तो चेतन आत्मा पौद्गलिक कर्मों के मेल से अचेतन बनता है और न अचेतनकर्म चेतन बनता है। जैसे सुवर्ण और चाँदी को मिला देने से दोनों एकमेक हो जाते हैं, तथापि दोनों धातुओं का अपना-अपना गुण अपने ही साथ रहता है, गुण एक दूसरे में नहीं मिलते हैं। इसीलिए जब न्यारगर से उनका शोधन कराया जाता है, तो वे दोनों धातुयें अलग-अलग हो जाती हैं। उसी तरह आत्मा का भी जब तपस्या के द्वारा शोधन होता है, तब आत्मा और कर्म दोनों अलग-अलग हो जाते हैं। फर्क इतना ही है कि शोधे हुए सोने में कोई चाहे, तो फिर भी चाँदी का मेल किया जा सकता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। किन्तु शुद्ध आत्मा में पुनः कर्मों का मेल नहीं हो सकता है। इस फर्क का भी कारण यह है कि आत्मा के साथ कर्मों का मेल किसी वक्त में किया हुआ नहीं है, वह अनादि से चला आ रहा है, इसलिए वह मेल एक बार पूर्णतया पृथक् हो जाने पर पुनः उनका मेल बनता नहीं है। यदि सुवर्ण और चाँदी का मेल भी इसी तरह अनादि का होता, तो उस मेल के भी पूरे तौर पर फट जाने पर पुनः उनका मेल भी नहीं हो सकता था। दो विजातीय द्रव्य जब अनादि से मिले हुए चले आते हैं, तो उनके पृथक् हो जाने पर पुनः वे नहीं मिलते हैं। जैसे खान में से निकला हुआ सोना विजातीय द्रव्य से मिला हुआ रहता है। एक बार सोने में से उस विजातीय द्रव्य के पूर्णतया अलग हो जाने पर फिर सोना उस विजातीय द्रव्य से नहीं मिल सकता है, जैसे 'तिल्ली में तेल' इत्यादि और भी उदाहरण दिए जा सकते हैं।

(शेष अगले अंक में)

'जैन निबन्धरत्नावली' (भाग २) से साभार

दुलार के साथ रखें सार्थक नाम

डॉ० ज्योति जैन

मेरी भतीजी 'चूँ चूँ' हाँ, उसे प्यार से इसी नाम से बुलाते हैं सब, नन्ही सी थी, तो पूरे घर में चूँ चूँ ही सुनाई देता था, पर अब जब वह बड़ी हो रही है, उसका नाम बुलाते समय कुछ अजीब सा लगने लगा है। सबसे अहम बात तो यह है कि एक दिन वह स्वयं कहने लगी कि 'आप लोगों ने ये क्या नाम रखा?' न चाहते हुये भी परिचित, रिश्तेदार और घर के सभी सदस्य उसे चूँ चूँ कहकर ही बुलाते हैं।

बच्चा जब जन्म लेता है, तो घर का प्रत्येक सदस्य लाड़ में उसे कुछ कहकर बुलाता है। उन्हीं में से कोई एक नाम भा जाता है और वह बच्चे का घर का नाम हो जाता है। बच्चा जब स्कूल जाना प्रारम्भ करता है, तो एक बार फिर नाम की खोजबीन शुरू हो जाती है और फिर एक बाहर का नाम हो जाता है।

पहले नामों को लेकर ज्यादा कशमकश नहीं होती थी। घर के बड़े-बुजुर्ग, दादा-दादी, नाना-नानी, बुआ या पंडित जी जो नाम रख देते थे, वही चल पड़ता था। पर आज एकल परिवार, उस पर भी एक या दो बच्चे। अतः नाम को लेकर बड़ी मशक्कत करनी पड़ती है, मेहनत करनी पड़ती है। किताबें पलटनी पड़ती हैं, उसके बाद भी जब तक लोग न कह दें अरे वाह! क्या नाम है, तब तक तसल्ली नहीं मिलती। यहाँ तक कि बाजार में नामों पर अनेक किताबें भी उपलब्ध हैं।

नामों का भी अपना एक संसार है। अनेक लोग बिल्कुल बेकार नाम रख देते थे। इसके पीछे तर्क था कि बच्चे जीवित रहें और उन्हें नजर न लगे जैसे नत्थू, चपटे, छिंगे आदि। बहुत से नाम मिठाइयों के नाम पर रखे गये जैसे- लड्डूसिंह, इमरतीदेवी। फूलों के नाम भी खूब रखे गये गुलाबसिंह, गुलाबोदेवी या गुलाबबाई, गेंदासिंह, गेंदाबाई, चमेली बाई, बेला सिंह, बेला रानी, चंपालाल, चंपाबाई। फलों के नाम पर चेरी, अंगूरी आदि, पशु पक्षियों के नाम पर तोता सिंह, मैना रानी आदि नाम चल पड़े। धातु के नाम पर अशर्फीलाल या अशर्फी देवी, हीरालाल-हीराबाई, सोनाबाई, रजत, स्वर्णलता आदि। नगीना से लेकर हीरा, मोती, नीलम, मूँगा, पुखराज, पन्ना आदि नाम भी प्रचलन में हैं। बच्चों की शारीरिक रचना भी कुछ नाम रखवा देती है जैसे मोटा हुआ, तो गोलू, चपटा सा है तो चपटू, छोटा है, तो छुट्टू आदि। फिल्म अभिनेता और अभिनेत्रियों के नाम, तो शुरू से लेकर आज तक लोकप्रिय रहे हैं। टी.वी. सीरियल के पात्रों के नाम भी लोकप्रिय हैं। प्रसिद्ध खिलाड़ियों के नाम भी पसंद किये गये हैं। संस्कृति से जुड़े लोग आज भी ऐतिहासिक पौराणिक, धार्मिक नामों को पसंद करते हैं जैसे- गौरी, राधा, चंदना, राजुल, अंजना, सोमा, ऋषभ, पारस, राघव, माधव, कृष्णा, आदि। एक सच यह है कि कुछ ऐसे नाम हैं, जो कभी नहीं रखे गये जैसे- दुर्योधन, कैकेयी, रावण, मंथरा आदि।

आजकल लोग नये नामों के चक्कर में, तथा किसी दूसरे का नाम न हो इस भावना से इतने कठिन या बेतुके नाम रख लेते हैं कि इनका न तो अर्थ होता है न उन्हें बुलाते बनता है। यहाँ तक कि बच्चों से अपना नाम भी लेते नहीं बनता है। अतः जो भी नाम रखा जाये सार्थक, छोटा और दुलारा सा होना चाहिए ताकि उसे लेने में प्यार झलके। व्यक्ति के व्यक्तित्व में कहीं न कहीं नाम का बहुत बड़ा योगदान होता है। नाम ही उसकी पहचान होती है। नाम ही जिदंगी भर उसके साथ चलता है। अतः प्यार दुलार के साथ सार्थक नाम रखना चाहिए।

सर्वोदय, जैन मण्डी, खतौली (उ.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मांसाहार एवं पैशाचिक बुद्धिहीनता

डॉ० किशोरीलाल जी वर्मा, मे. ओ., अलीगंज

हम लोग संसार के क्षणिक जीवन में कुछ ऐसे भ्रम में पड़ जाते हैं कि यदि उस जीवन काल का अनुमान लगाया जाये, तो शुभकर्मों की रोकड़ बही पर चढ़ाने के लिये जमा में 'कुछ नहीं' निकल सकता है, जीवन प्रायः कष्टमय है। उसमें सुखाभासकी झलक, जो कभी दैव अनुकम्पा से दिखती है, वह स्थायी नहीं। भौतिक सुख इन्द्रिजन्य होने के कारण सुखाभास है। उसकी तुलना आत्माह्लाद से, शुद्ध आत्मसुख से नहीं की जा सकती है। सच्चे सुख से शुद्ध विचार उत्पन्न होते हैं। विचारों की मलिनता सच्चे सुखको नष्ट कर देती है। यह जानबूझकर भी हमलोग दुखी होते हैं और दुख के कारण बनते हैं, आश्चर्य केवल यही है। हम क्यों रोगी हैं? इसलिये कि शरीर में विकारविष उत्पन्न किया है और वह हमारे ही आचार विचारों का फल है।

किसी रोग की पहिचान लक्षणों द्वारा होती है, किन्तु केवल लक्षणों का जानना, उस समय तक व्यर्थ है, जब तक कारण का बोध न हो और उसकी चिकित्सा का ज्ञान न हो। जो कुछ भी शरीर में विष उत्पन्न होता है, वह भोज्य पदार्थों की अन्तिम परिणत अवस्था एवं विचारों के प्रभाव से होता है, जो ऐसे भोज्य पदार्थों की इच्छा उत्पन्न करते हैं। इसलिये ही चिकित्सक को बहुधा असफलता होती है। वैसे तो कई एक ऐसे भोज्यपदार्थ हैं जिन पर विचार प्रकट किये जा सकते हैं, किन्तु यहाँ पर मैं केवल मांसाहार पर ही सीमित रहूँगा।

यदि हम स्वयं ठीक नहीं रह सकते, तो दूसरे अवश्य ठीक करेंगे। हम लोगों को पापों और दुष्कर्मों के लिये कोई दूसरा दण्ड नहीं देता, बल्कि मेरी समझ में पाप और दुष्कर्म स्वयं हमको सजा देते हैं।

हिपोक्रेटस, जिसने चिकित्सा निकाली और जो शाकाहार का दक्ष डाक्टर था, उसकी यह शिक्षा थी कि भोजन ही केवल औषधि है और औषधि केवल भोजन है।

भोजन करना और उसका मलमूत्र बनना अथवा व्यर्थ पदार्थों का बाहर निकलना, ये दो पृथक् क्रियायें हैं। यदि परिणत भोज्य का व्यर्थ अंश छाँटने में शरीर के अंगो पर अधिक प्रभाव पड़ता अथवा उनकी छिन्नता हो जाती है, शरीर शिथिल होकर रोगी हो जाता है, जिसे केवल डॉक्टर या रोगी जान सकता है।

मांस के आहार से अंगों की शिथिलता के अतिरिक्त किसी और भोजन की अपेक्षा अधिक शारीरिक क्षति होती है। मांस को पकाने में उसके जीवन प्रदान करनेवाले मूल कण समाप्त हो जाते हैं और केवल तेजाब एवं नायट्रोजिनिस पदार्थ अर्थात् वायु उत्पादक अन्तिम शेष रह जाते हैं। इन पदार्थों को ग्रहण करने का अर्थ केवल क्रमशः आत्मघात करना ही कहा जा सकता है।

पके हुये मांस में नायट्रोजन मनुष्य की आवश्यकता से कहीं अधिक और सलफर तथा फास्फोरस की राख अधिकतर रह जाती है, जिसमें मूत्र सौगुना तेजाबी, उस मूत्र के अनुपाते से होता है, जो एक अनुमानित भोजन से बनता है। फल और साग मांस के साथ ग्रहण करने के उपरान्त भी उनके खारी नमक इस तेजाब का समीकरण नहीं कर सकते हैं। मेरा अनुभव है कि मांसाहारियों को बहुधा रक्तदबाब के अधिक होने के रोग शाकाहारियों की अपेक्षा अधिक होते हैं। उनके मूत्राशय भी कमजोर होते हैं।

मिचीगन यूनीवर्सिटी के प्रो० श्री न्यूवर्ग का कथन है कि अधिकांश में अधिक समय तक मांसाहार करने से धमनियाँ मोटी हो जाती हैं और ब्राइट्स डिजीज, सिलसिलबोल अथवा बहुमूत्र और गुर्दे की बीमारियाँ हो जाती हैं। रूस के प्रमुख डाक्टर एनीश्को ने भी यह प्रमाण दिया है कि कोलेस्ट्रोल, जो मांस की चर्बी का मुख्य अंश है, धमनियों की सिकुड़न अथवा आर्टीरीयो स्कीलौरीसस उत्पन्न करता है। प्रो० मेकोलम अमेरिका का एक प्रसिद्ध भोज्य रसायनवेत्ता डाक्टर है। उसका मत है कि मांस कोई और किसी प्रकार मनुष्य के लिये उसके स्वास्थ्य को लाभकारी या आवश्यक भोज्य पदार्थ नहीं है।

भोज्य पदार्थों के मुख्यांश की रसायन क्रिया का खारी अथवा खट्टी या तेजाबी होना ही पाचन क्रिया की विधि पर प्रभाव डालता है। रक्त की रसायनक्रिया साधारणतः ७५ प्रतिशत खारी तथा २५ प्रतिशत खट्टी या तेजाबी होती हैं। फल तथा साग के नमक भी अधिक से अधिक खारी और तेजाबी हो सकते हैं। अतः उनकी मात्रा का ठीक अनुपात जान लेना उचित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कदाचित् रक्त के तेजाब का अनुपात ठीक रहे और तेजाबी भोजन ग्रहण किया जाय, तो भी शरीर कार्य करता है, परन्तु इस अनुपात का घट बढ़ जाना संकट से खाली नहीं है।

जो भोज्य पदार्थ खारी नमक बनाते हैं, वे तेजाब का समीकरण करते हैं और जो तेजाबी नमक बनाते हैं, वे खार का समीकरण करते हैं। इस प्रकार की क्रियायें और प्रतिक्रियायें जो भोजन से उत्पन्न होतीं हैं, शरीर की रसायन क्रिया को ठीक रखती हैं। रोटी, बिस्कुट और अन्य अन्न पदार्थ तेजाब उत्पन्न करते हैं और फल साग और बादाम आदि खार। यही इस प्रकार रसायन अनुपात को रक्त में ठीक रखते हैं।

मांस, मछली, अंडा एवं चीज गहरे तेजाबी भोज्य पदार्थ हैं और जब ये पाचनक्रिया में जल जाते हैं, तो तेजाबी अनुपात को सलफ्यूरिक एसिड, यूरिक एसिड और फास्फोरिक एसिड में परिणत होकर बढ़ा देते हैं, जिससे मूत्ररोग, हृदय की धमनियों का रोग और एपोप्लेक्सी, एक प्रकार का लकवा रोग उत्पन्न होता है।

कुछ व्यक्तियों का ऐसा निराधार विचार है कि मांस के अतिरिक्त अन्य रूपेण शक्ति उत्पन्न नहीं हो सकती। यह पैशाचिक मनोवृत्ति है। ऐसे व्यक्तियों का हृदय पाषाण है, जो पर दुख से नहीं पसीजता। इनमें दया छू तक नहीं गई है। वे केवल असार संसार के दिखावटी वैभवों में लिप्त होकर चूर हो रहे हैं।

मेजर जनरल सर राबर्ट मेक गेरीसन ने जो ब्रिटिश साम्राज्य का प्रमुख भोजन का दक्ष डॉक्टर है, कहा है कि यदि अन्न, दूध और ताजे साग विधिपूर्वक ग्रहण किय जावें, तो वे मनुष्य शरीर की बनावट और उसके कार्यक्रमों को ठीक रखते हैं। उन्होंने मांसको अनावश्यक भोज्य पदार्थ बताया है।

एक साधारण किन्तु निराधार विचार यह भी है कि जो भोजन हम करतें हैं, उसके अनुसार या उससे ही तत्काल शक्ति उत्पन्न हो जाती है। होता ऐसा कुछ भी नहीं है। शरीर की युनिट अथवा बनावट के मूल अंश, छोटे-छोटे कण हैं, जिन्हें अँग्रेजी में सेल्स (cells) कहते हैं। ये सेल्स शरीर के भीतर सौ मील प्रति घंटे की दर से पृथ्वी के चक्करों की गति के अनुसार दौड़ते रहते हैं। इस प्रकार यही कण शक्ति के आकर्षण की लकीरों पर हो कर शक्ति उपार्जन करते रहते हैं, जिससे शरीर में एक स्फूर्ति का आभास अथवा बिजली का चार्ज हो जाता है। अतएव शरीर की प्रथम शक्ति उसके आन्तरिक स्थान से ही प्राप्त होती है।

डॉ० बरघोल्ज, एक अमेरिकन डाक्टर ने बताया है कि प्रत्येक पौधे, फल, साग इत्यादि में दो प्रकार के रेशे होते हैं, जो बिजली के पोजिटिव और निगेटिव तारों का काम करते हैं। और जब ये भोजन द्वारा शरीर में पहुचते हैं, तो पाचनक्रिया के अतिरिक्त, जो रसायन की बनावट इत्यादि में उपयोगी होता है, एक बिजली को अपने रेशों की मिलावट द्वारा शरीर में उत्पन्न करता है। वे ही शक्ति को एकत्रित करते हैं और फिर धीरे-धीरे, उस शक्ति को निकाल देते हैं। इसका उदाहरण इसप्रकार है कि एक गेल्वनो मीटर के सरकिट अथवा तारों के जुड़े हुये घिराव में सेव लगा दीजिये, तो सुई हिलने लगेगी और फिर क्रमशः रुक जायेगी। फिर उस सेव को निकाल कर थोड़ी देर अलग रख दीजिये। जब उसमें आक्सीजन हवा से प्रवेश कर लेगी, तो फिर उसको सरकिट में लगा दीजिये। वही क्रिया फिर होने लगेगी। इससे यह प्रमाण मिला कि आक्सीजन शरीर में भोजन द्वारा भी कार्यक्रम में आती है और कार्बन डी ऑक्साइड निकल जाती है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि भोजन से कण अथवा सेल्स बनती हैं, जो आकर्षण स्थान से शक्ति उपार्जन करके अपनी दौड़ से एक बिजली की उत्पत्ति करती हैं, जिससे शरीर की गरमी और चलने फिरने की क्रिया होती है। इसी के द्वारा हम अपनी इच्छानुसार चलते फिरते और कार्यक्रम करते हैं। जब उक्त क्रिया में किसी अमुक भोज्य पदार्थ से रुकावट उत्पन्न हो जाती है और जिस अंग में भी ये सेल्स ठीक दौड़ नहीं लगा पातीं, वही अंग शिथिल होकर बीमार हो जाता है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि जो शक्ति हमको जीवित रखती है, रुकावट होने से तेजी से हमको मार भी सकती है। किसी का भोजन किसी का विष भी हो सकता है, क्योंकि शरीर की धमनियों की बनावट में उसकी परिस्थिति के अनुसार अन्तर होता है। कुत्ते का पेट हड्डी हजम कर सकता है, पर मनुष्य नहीं। बादाम कुत्ते को मार सकती है, किन्तु मनुष्य को लाभकर हैं, नीबू का रस बिल्ली और खरगोश के लिये विष है। कपूर से किनारी नामका जानवर मर जाता है। कबतूर अफीम अधिकांश में खा लेता है। ऐसे अनेक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदाहरण हैं।

हमारे शरीर की वनावट भोजन पर निर्भर है। अतएव उचित भोजन जो शाकाहार है, उसको विधिवत् ग्रहण करने से असाधारण रुकावट नहीं होती और शरीर हृष्टपुष्ट ठीक विचारों को उत्पन्न करने में सहायक होता है।

यह धारणा भी गलत है कि मांस से मांस उत्पन्न होता है, क्योंकि पकने पर उसके जीवित कण नहीं रहते और कण भी भिन्न होते हैं। मांसभोजन मानव को पशु बना देता है।

में अब यह बताता हूँ कि मांसाहारी जानवरों और मनुष्यों में क्या अन्तर है?

जितने भी मांस खानेवाले जानवर हैं उनकी आँते छोटी होती हैं, जैसे शेर की आँत १५ फीट लम्बी होती है। इसके विपरीत, जितने जीव संतोषी, शाकाहारी अथवा मांस न खानेवाले हैं, उनकी आँतें २६ से ३० फीट तक लम्बी होती हैं, जिससे साग-पात लम्बे समय तक सड़गल कर पाचनक्रिया में रस बना सकें। इसी प्रकार से मनुष्य और मांसभक्षी पशु के दाँतो में भी अन्तर है। यदि एक बन्दर को बंद करके मांस खिलाया जावे, तो उसे तपेदिक हो जायेगा। साग के भोजन में कई ऐसे सुन्दर अमूल्य पदार्थ हैं, जो मनुष्य को हृष्टपुष्ट रखने में लाभकारी होते हैं। सबको न बताकर केवल एक सोयाबीन का ही उल्लेख करूँगा। इसमें लेसीथीन और फासफोरस ब्रहमाइड की शक्ति के लिये ठीक अनुपात में होता है। इसमें वेसीलिस एसिडोफिल्स अर्थात् एक प्रकार के आँत के कीटाणु, जो भोजन की पाचनक्रिया करते हैं, अधिक काल तक जीवित रह सकते और बढ़ सकते हैं। अत: सोयाबीन मांस की अपेक्षा कहीं अधिक उत्तम वस्तु भोजन की है।

ऐसा देखा गया है कि बच्चा पैदा होते समय हृष्टपुष्ट होते हुये भी २० या २१ वर्ष की युवावस्था में, जब उसे स्वस्थ होना चाहिये, रोगी बन जाता है, यह भोजन एवं आचार-विचारों का ही दुष्प्रभाव होने का फल है। प्रत्येक जीवको अपनी उत्पत्ति और बढान काल के अठगुने समय तक जीवित रहना चाहिये, परन्तु मनुष्य की आयु दूनी भी कठिनता से हो पाती है। यह सब केवल ठीक और विधिपूर्वक भोजन न प्राप्त करने का ही दुष्परिणाम है। बहुत से पदार्थों का मुख्यांश छील कर या अधिक पकाकर नष्ट कर दिया जाता है अथवा मसालों से स्वादिष्ट बनाने के लिये ऐसा भोजन किया जाता है जो, अँतड़ियों की अंतरझिल्ली को जलाकर छिन्नभिन्न कर देता है और पेचिश इत्यादिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

अतएव इन्द्रियलिप्सा और पैशाचिकता को छोड़कर मानव को उचित है कि वह दयाभाव उत्पन्न करे। शरीर-पोषण और स्वास्थ्यवर्धन के लिये वह ठीक और स्वास्थ्यकर शाकाहार को ग्रहण करे। लोक के सभी महापुरुष शाकाहारी हुये हैं। भगवान् महावीर ही अहिंसा के अवतार थे। उनके उपदेश से भारत में शाकाहार-विज्ञान की विशेष उन्नति हुई थी। उनके अतिरिक्त श्री गौतमबुद्ध, ईसामसीह, मुहम्मद सा०, ऋषि दयानंद एवं विश्वविभूति महात्मा गाँधी के जीवनचरित्र पढ़िये और देखिये कि वे अहिंसावृत्ति को धारण करके ही महान् हुय थे। शाकाहार ही श्रेष्ठ भोजन है।

'भगवान् महावीर स्मृति ग्रन्थ' से साभार

संत श्री गणेश प्रसाद जी वर्णी की राष्ट्रभक्ति

सन 1945 की घटना है। मध्यप्रदेश की संस्कारधानी जबलपुर में सुप्रसिद्ध साहित्यकार एवं राजनीतिज्ञ प्रान्तीय कौंसल, नागपुर के उच्चाधिकारी श्रीयुत पं० द्वारिका प्रसाद जी मिश्र की अध्यक्षता में आजाद हिन्द फौज की सहायतार्थ विशाल सभा का आयोजन हुआ। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्ववाली आजाद हिन्द फौज के सैनिकों को राजद्रोह में अँग्रेजों द्वारा बंदी बनाकर मुकदमा चलाया जा रहा था।

इस सभा को क्षुल्लक श्री १०५ गणेश प्रसाद वर्णी ने संबोधित करते हुए व्याख्यान दिया कि यद्यपि मैं राजकीय विषय में कुछ नहीं जानता, फिर भी मेरी भावना है कि हे भगवन्! देश का संकट टालो। जिन लोगों ने देश के लिये अपना सर्वस्व न्यौछावर किया, उनके प्राण संकट से बचाओ। मेरे पास सहायता करने को कुछ नहीं है, केवल दो चादरें हैं। इनमें से एक चादर मुकदमे की पैरवी के लिये देता हूँ और मन से परमात्मा का स्मरण करता हुआ विश्वास करता हूँ कि वे सैनिक अवश्य ही कारागृह से मुक्त होंगे। सभा में उस चादर की नीलामी की गई, जो उस सस्ते जमाने में भी तीन हजार रुपयों में गई और यह राशि सैनिकों की सहायतार्थ भेजी गई। संत वर्णी की भावना के अनुरूप आजाद हिन्द फौज के सैनिक जल्द ही मुक्त कर दिये गये।

श्रीमती अनीता जैन 'राकेश' बरगी हिल्स, जबलपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनदर्शन की वर्तमान में प्रासंगिकता

डॉ० पारसमल अग्रवाल

ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में बहुत तेजी से विश्व में तरक्की हो रही है। किन्तु कई कारणों से साधारण जनता न तो हमारे शास्त्रों का मर्म जान पाती है और न ही आधुनिक ज्ञान का रहस्य। इसका परिणाम यह होता है कि साधारण जनता को विरोधाभास प्रतीत होता है और वह या तो विज्ञान को धिक्कारती है या धार्मिकज्ञान को व्यर्थ समझती है या वह इन दोनों में तटस्थ रहते हुए टी.वी. एवं सिनेमा द्वारा चित्रित मार्ग को ही जीवन का ध्येय जाने-अनजाने में बना लेती है।

हमारे ऋषियों ने जो मार्ग बताया है वह लाभदायक है तथा आधुनिक विज्ञान भी सत्य की खोज में लगा हुआ है। दुनिया केवल उतनी ही नहीं है, जितनी हल्के-फुल्के समाचार-पत्र, साहित्य एवं फिल्मी दुनिया में चित्रित होती है। इस कथन को स्पष्ट करने का इस लेख में अति संक्षेप में प्रयास किया जा रहा है। जैनदर्शन के चारों अनुयोगों का समावेश करने की दृष्टि से प्रत्येक के कुछ ही उदाहरण प्रस्तुत करना संभव हो सकेगा। प्रत्येक अनुयोग के लिए एक प्रश्न एवं उसके उत्तर द्वारा तथ्य स्पष्ट किये जाने का प्रयास यहाँ किया गया है।

१. क्या पृथ्वी के अतिरिक्त अन्यत्र जीव हैं?

जैन करणानुयोग में शंका करते हुए सबसे वजनदार शंका यह होती है कि 'स्वर्ग-नरक किसने देखा? जो कुछ भी है वह इस पृथ्वी पर ही है।'

इस शंका का पूर्ण समाधान क्या विज्ञान कर सकेगा? कब तक? इन प्रश्नों का उत्तर देना कठिन कार्य है। किन्तु यह जानना उपयोगी होगा कि अब तक विज्ञान कितना जान पाया है। १९६७ में औषधि-विज्ञान का नोबिल पुरस्कार प्राप्त करनेवाले वैज्ञानिक जार्ज वाल्ड ने एक लेख में यह स्पष्ट बताया है-

"The smallest estimate we would consider of the fraction of stars in the milky way that should have a planet that could support life is one percent. That means a billion such places in our own home galaxy, and with a billion such galaxies within reach of our telescopes, the already observed universe should contain at least a billion billion-10^{13} places that can support life."

तात्पर्य यह है कि जार्ज वाल्ड के अनुसार 10000000000000000 (एक के आगे १८ शून्य) से भी अधिक स्थान (पृथ्वी जैसे) इस ब्रह्माण्ड में हैं जहाँ जीवधारी होने की संभावना है।

२. क्या दिन में भोजन करना व अण्डे-मांस, मद्य का त्याग लाभदायक है?

चरणानुयोग के इन बिन्दुओं के सम्बन्ध में मेरे स्वयं के ४ वर्षों के अमरीका में रहकर वहाँ के जीवन को देखने समझने व वहाँ के आधुनिक साहित्य के आधार पर कुछ संकेत यहाँ देना चाहूँगा।

(१) अमरीका की अधिकांश आबादी (८० प्रतिशत से अधिक) शाम को ७ बजे के पूर्व अपना शाम का भोजन (Dinner) ले लेती है। अमरीकी संस्कृति में यह सायं भोज का समय मुख्यतया स्वास्थ्य एवं सुविधा का कारण बना है।

(२) आज मोटापा एवं कोलेस्टरल की समस्या अमरीका में इतनी बढ़ गई है कि लगभग प्रत्येक पत्र-पत्रिका में खानपान के सम्बन्ध में लेख प्रकाशित होते रहते हैं व एक स्वर से लगभग सभी लेख अण्डे एवं मांस का प्रयोग हानिकारक बताते हैं। अण्डा अब अमरीका में खलनायक हो गया है। अण्डे में कोलेस्टरल की मात्रा सबसे ज्यादा होती है।

(३) अमरीका में सिगरेट का प्रचलन बहुत तेजी से कम हो रहा है। अमरीका में मैं जिस विश्वविद्यालय में था, वहाँ किसी भी भवन में कोई भी सिगरेट नहीं पी सकता है। पहले मैंने १९७९-८० में जिस विश्वविद्यालय में सिक्के डाल कर सिगरेट खरीदनेवाली मशीनें देखी थीं, वे अब १९८६-८९ में देखने को नहीं मिलीं।

(४) अमरीका में सिगरेट का इतना विरोध होने के पहले बहुत वर्षों तक सिगरेट के पेकेट पर 'धूम्रपान हानिकारक है' ऐसी चेतावनी छापी गई थी। इसी तरह १९८९ में अमरीकी सरकार ने शराब की बोतल पर भी अब यह चेतावनी छापने का कानून बनाया है कि 'गर्भवती महिलाओं के लिए शराब हानिकारक है।' शराब उद्योग को यह पहला झटका लगा है।

(५) एड्स रोग के प्रचलन के बाद अमरीकी जनता को यह एहसास हो गया है कि न केवल जुआ, मांस, मद्य एवं चोरी बुरे हैं, अपितु वेश्यावृत्ति एवं कुशील भी इसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जन्म में जानेलेवा बीमारीवाले हैं। इस प्रकार जैन-चरणानुयोग ने, जो सात व्यसन बताए एवं जिनका त्याग अधिकांश जैन परिवारों में एक बच्चे को सहज ही विरासत में मिलता है, उनमें से ६ व्यसनों को अमरीका ने बुरा मानना स्वीकार कर लिया है। शेष एक व्यसन-शिकार-के बारे में भी इसी तरह कभी चेतना जागृत होगी।

३. क्या बीसवी सदी में कोई ऐसा नायक पैदा हुआ है जिसने 'अहिंसा परमो धर्मः' की महिमा उजागर की हो?

इस प्रश्न को मैं ताजा 'प्रथमानुयोग' के रूप में लेकर प्रथमानुयोग में वर्णित समस्त महापुरुषों के चरित्र को समझने की पात्रता बनाना चाहता हूँ।

महात्मा गाँधी ने जो सफल अहिंसात्मक आन्दोलन चलाया, उसके लिए आज विश्व के समस्त राजनेता नतमस्तक हैं। आइंस्टीन ने गाँधी जी के बारे में एक स्थान पर यह लिखा है कि कुछ सदियों के बाद लोगों को इस पर विश्वास नहीं आयेगा कि ऐसा हाड़ मांस का पुतला इस धरती पर सचमुच में पैदा हुआ था।

गाँधीजी ने यह अहिंसा एवं अहिंसा के उपयोग की विधि श्रीमद् राजचन्द्र से जैनग्रन्थों के आधार पर सीखी थी। गाँधीजी ने स्वयं अपनी आत्मकथा में यह लिखा है कि जब भी अहिंसा के बारे में उन्हें शंका एवं अधिक विस्तृत जानने की जिज्ञासा रहती थी, तब वे श्रीमद् राजचन्द्र से सम्पर्क करते थे।

अमरीका से कुछ वर्ष पूर्व एक पुस्तक[२] प्रकाशित हुई, जिसमें विश्व को सर्वाधिक प्रभावित करनेवाले १०० व्यक्तियों की जीवनी एवं उनके कार्यों का वर्णन किया है। इन १०० में भगवान् महावीर का नाम भी है व उनके प्रभाव के रूप में उस पुस्तक में लेखक ने यह स्पष्ट लिखा कि भगवान् महावीर की अहिंसा को महात्मा गाँधी ने अपनाकर न केवल भारत को अपितु समस्त विश्व को प्रभावित किया है और हो सकता है २१वीं सदी में इसकी और अधिक आवश्यकता एवं उपयोग हो।

४. वैज्ञानिक सृष्टि को किसी के द्वारा निर्मित नहीं मानते हैं। क्या जैनदर्शन इस आधुनिक वैज्ञानिक विचारधारा से सहमत है?

सृष्टि ही क्यों, वैज्ञानिकों का तो यह मूल सिद्धान्त है कि 'ऊर्जा न तो पैदा की जा सकती है और न ही नष्ट की जा सकती है, केवल रूपान्तरण होता है।' जैन द्रव्यानुयोग इस मूल सिद्धान्त से पूर्णतः मेल खाता है। विषय अत्यन्त गंभीर होने के कारण विस्तार में न जाते हुए समयसार की गाथा क्र० १०४ द्वारा संकेत देना ही यहाँ उचित होगा।

दव्वगुणस्स य आदा ण कुणदि पोग्गलमयम्हि कम्मम्हि।
तं उभयमकुव्वंतो तम्हि कहं तस्स सो कत्ता॥

अर्थात् आत्मा किसी भी पदार्थ को या उसके गुण को नहीं कर सकता है व इस अपेक्षा से वह कर्त्ता नहीं है।

चारों अनुयोगों के व आधुनिक ज्ञान के कुछ ही चावलों को देखकर यह निर्णय नहीं लिया जा सकता है कि परमाणु बम या टी.वी. बनाने की विधि शास्त्रों में भी होना चाहिए और यदि नही है तो.....। विशाल संसार, शाकाहारी भोजन, सात व्यसनों का त्याग, अहिंसा का महत्त्व व मूलतः प्रत्येक द्रव्य की स्वतंत्रता घोषित करनेवाला वैज्ञानिक चिन्तन व जैनदर्शन की समानता इस लेख में जिस प्रकार वर्णित की गई है, उससे निश्चितत: यह धारणा सिद्ध होती है कि यह दर्शन केवल चर्चा का ही विषय नहीं, अपितु यह आधुनिक युग में व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के जीवन में भी अत्यंत लाभकारी है।

सन्दर्भ

1. George wald, the cosmology of Life and Mind, in 'Synthesis of Science and Religion', Edited by T.D. Singh and R. Gomatam, Published by The Bhaktivedanta Institute, Sanfrancisco, Bombay 1998.

2. M.H. Hart, "The 100 A ranking of the most influential persons in history'. Citadel Press Secaucus, New Jersey, 1987

वात्सल्यरत्नाकर (भाग २) से साभार

कबीर-वाणी

लड़ने को सब ही चले, सस्तर बाँधि अनेक।
साहिब आगे आपने, जूझेगा कोय एक॥
मानुस खोजत मैं फिरा, मानुस बड़ा सुकाल।
जाको देखत दिल घिरै, ताका पड़ा दुकाल॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्तम अंश

तत्त्वार्थसूत्र में प्रयुक्त 'च' शब्द का विश्लेषणात्मक विवेचन

पं० महेशकुमार जैन, व्याख्याता

षष्ठ अध्याय

आद्यं संरम्भसमारम्भारम्भयोगकृतकारितानुमतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः॥ ८॥

श्लोकवार्तिक में इस सूत्र में आये 'च' शब्द की व्याख्या नहीं की है।

सर्वार्थसिद्धि- 'च' शब्दोऽनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनकषायभेदकृतान्तर्भेदसमुच्चार्थः।

राजवार्तिक - 'च' शब्दः क्रोधादिविशेषोपसंग्रहार्थः। २०। 'च' शब्दः क्रियते क्रोधादीनां विशेषाणाम् उपसंग्रहार्थम्। तेन अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनषोडशकषाय-भेदात् द्वात्रिंशदुत्तरचतुःशतगणना-विकल्पा वेदितव्याः।

अर्थ- सूत्र में 'च' शब्द क्रोधादि के विशेष का संग्रह करने के लिए है। २०। अर्थात् 'च' शब्द से कषायों के भेद और उपभेदों का संग्रह हो जाता है। अतः अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन कषाय के सोलह भेदों से गुणा करने पर जीवाधिकरण आस्रव के चार सौ बत्तीस भेद भी जानना चाहिये।

सुखबोधतत्त्वार्थवृत्ति- 'च' शब्दोऽनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनषोडशकषायभेदकृताऽन्तर्भेदसमुच्चयार्थः। तेन द्वात्रिंशदुत्तरचतुःशतगणनास्तद्विकल्पा हिंसापेक्षया वेदितव्याः। तद्वदनृताद्यपेक्षयापि योज्याः।

अर्थ- सूत्र में 'च' शब्द आया है उससे अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन सम्बन्धी क्रोधादि कषायों के सोलह भेदों के निमित्त से होनेवाले अन्तर्भेदों का समुच्चय होता है। वे भेद चार सौ बत्तीस हैं, ये सब भेद हिंसा की अपेक्षा समझना, इसी प्रकार असत्य, चोरी आदि की अपेक्षा चार सौ बत्तीस, चार सौ बत्तीस भेद जीवाधिकरण के जानने चाहिये।

तत्त्वार्थवृत्ति- चकार किमर्थम्? अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनकषायभेदकृतान्तर्भेदसमुच्चयार्थः।

अर्थ- सूत्र में च शब्द किसलिए है? अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन कषायों के अवान्तर भेदों का समुच्चय करने के लिए दिया है।

भावार्थ- जीवाधिकरण के १०८ भेद होते हैं, इसमें अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन का भेद करने पर ४३२ भेद हो जाते हैं, तथा हिंसा आदि पाँच पापों के साथ गुणा करने पर ४३२×५=२१६० भेद हैं। सूत्र में आये 'च' शब्द से जीवाधिकरण के २१६० भेदों का संग्रह हो जाता है।

स्वभावार्मदवं च॥ १८॥

सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक एवं सुखबोधतत्त्वार्थवृत्ति ग्रंथ में 'च' शब्द की व्याख्या नहीं है।

तत्त्वार्थवृत्ति- चकारः परस्परसमुच्चये। तेनायमर्थः- न केवलम् अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्यायुष आस्रवो भवति किं च स्वभावमार्दवत्वं च मानुषस्यायुष आस्रवो भवति। यद्येवं तर्हि अल्पारम्भपरिग्रहत्वं स्वभावमार्दवं च मानुषस्यायुषः इत्येवमेकं सूत्रं किमिति न कृतम्? सत्यमेवैतत्, किन्तु पृथग्योगविधानम् उत्तरायुरास्रवसम्बन्धार्थम्। तेनायमर्थः-स्वभावमार्दवं, सरागसंयमादिकं च देवायुरास्रवो भवतीति वेदितव्यम्।

अर्थ- 'च' शब्द परस्पर समुच्चय के लिए है, इससे यह अर्थ है कि केवल अल्पारम्भ, अल्प-परिग्रह का भाव मनुष्य-आयु के आस्रव का कारण नहीं है, किन्तु स्वभावमार्दव का भाव भी मनुष्य आयु के आस्रव का कारण है। **शंका-** यदि ऐसा है, तो एक ही सूत्र क्यों नहीं किया? **समाधान-** आपकी बात सत्य है फिर भी पृथक्प्रयोग का विधान दूसरी अर्थात् देवायु के आस्रव का सम्बन्ध करने के लिए है। इससे यह अर्थ है- स्वभाव की मृदुता और सरागसंयम आदि देव-आयु के आस्रव होते हैं यह जानना चाहिए।

श्लोकवार्तिक-

स्वभावमार्दवं चेति हेत्वंतरसमुच्चयः।
मानुषस्यायुषस्तद्धि मिश्रध्यानोपपादिकम्॥

अर्थ- 'स्वभावमार्दवं च' इस सूत्र में आये 'च' शब्द का अर्थ समुच्चय है। इस कारण मनुष्य-आयु-सम्बन्धी आयु के आस्रावक हो रहे दूसरे हेतु का भी समुच्चय हो जाता है। अथवा स्वभावमृदुतासे मनुष्यआयु और देव-आयु का आस्रव होना समझा दिया जाता है। साथ ही **विनीतस्वभाव, प्रकृतिभद्रता, संतोष,** अनसूया, अल्प-संक्लेश, गुरुदेवतापूजा आदि कारणों का भी संग्रह हो जाता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। जब कि वह स्वभावमृदुपना शुभाशुभ ध्यानों से मिश्रित हो रहे ध्यान से अन्वित होकर उपज रहा हो, तब मनुष्यआयु का आस्रावक हो जायेगा, अन्यथा नहीं।

भावार्थ- स्वभाव की मृदुता से मनुष्य आयु एवं देव आयु दोनों का आस्रव होता है, इसी का समुच्चय करने के लिए सूत्र में 'च' शब्द दिया गया है।

निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषाम्॥ ९॥

सर्वार्थसिद्धि- 'च' शब्दोऽधिकृतसमुच्चयार्थः। अल्पारम्भपरिग्रहत्वं च निःशीलव्रतत्वं च।

अर्थ- सूत्र में जो 'च' शब्द है वह अधिकार प्राप्त आस्रवों के समुच्चय के लिए है, इससे यह अर्थ निकलता है कि अल्प आरम्भ और अल्पपरिग्रहरूप भाव तथा शील और व्रतरहित होना सब आयुओं के आस्रव हैं।

राजवार्तिक- 'च' शब्दोऽधिकृतसमुच्चयार्थः। १। अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्यायुषः निःशीलव्रतत्वं चेत्यधिकृतसमुच्चयार्थश्चशब्दः क्रियते।

अर्थ- 'च' शब्द समुच्चय ग्रहण के लिए है। 'च' शब्द से प्रयोजन यह है कि अल्पारम्भ और अल्पपरिग्रहत्व भी मनुष्य आयु के आस्रव के कारण हैं तथा निःशीलत्व और व्रतरहितत्व भी मनुष्य आयु के आस्रव के कारण हैं। इस अधिकार प्राप्त मनुष्यायु के समुच्चय के लिए चकार ग्रहण किया है।

तत्त्वार्थवृत्ति- चकारादल्पारम्भपरिग्रहत्वं च सर्वेषां नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवानाम् आयुर्ष आस्रवो भवति।

अर्थ- सूत्र में आये चकार से अल्पारम्भ और अल्पपरिग्रह का भाव नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव सभी आयुओं के आस्रव का कारण है।

सुखबोधतत्त्वार्थवृत्ति- 'च' शब्दोऽधिकृतस्याऽल्पारम्भपरिग्रहत्वस्य समुच्चयार्थः। ततो न केवलं निःशीलव्रतत्वं मानुषस्यास्रवः, किं तर्ह्यल्पारम्भपिरिग्रहत्वं चेत्यर्थः सिद्धो भवति।

अर्थ- 'च' शब्द से अधिकृत अल्प आरम्भ और अल्पपरिग्रह का समुच्चय होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि केवल निःशीलव्रतत्व ही मनुष्यायु का आस्रव नहीं है, अपितु अल्प आरम्भ और अल्पपरिग्रह भी हैं।

श्लोकवार्तिक- 'च' शब्दोऽधिकृतसमुच्चयार्थः।

अर्थ- सूत्र में कहा गया 'च' शब्द तो अधिकार प्राप्त अल्पारम्भपरिग्रहत्व का समुच्चय करने के लिए है।

भावार्थ- निःशील और व्रत रहित के साथ अल्पारम्भ और अल्पपरिग्रह भी चारों आयु के आस्रव का कारण है। इसी के समुच्चय के लिए सूत्र में 'च' शब्द दिया है।

सम्यक्त्वं च ॥ २१॥

सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक व तत्त्वार्थवृत्ति में 'च' शब्द की व्याख्या नहीं है।

श्लोकवार्तिक- किमर्थश्चशब्द इति चेदुच्यते-
सम्यक्त्वं चेति तद्धेतु समुच्चयवचोबलात्।
तस्यैकस्यापि देवायुः कारणत्वविनिश्चयः॥ १॥

अर्थ- सूत्र में 'च' शब्द कहने का प्रयोजन क्या है? ऐसा पूछने पर कहते हैं- **'सम्यक्त्वं च'** इस सूत्र में उस देव-आयु के हेतुओं का समुच्चय करनेवाले वचन के बल से उस एक सम्यक्त्व को भी देव आयु के कारणपन का विशेषतया निश्चत हो जाता है। अर्थात् 'च' शब्द से सराग संयम आदि का समुच्चय हो जाता है।

सुखबोधतत्त्वार्थवृत्ति- 'च शब्दः पूर्वोक्तसमुच्चयार्थ।' अविशेषाभिधानेऽप्यत्र सौधर्मादिविशेष-गतिर्भवति पृथग्योगकरणसामर्थ्यात्।

अर्थ- सूत्र में 'च' शब्द पूर्वोक्त समुच्चय के लिए है। सामान्य से देवायु का आस्रव करने पर भी पृथक् सूत्र करने से सिद्ध होता है कि सम्यक्त्व सौधर्म आदि वैमानिक देवायु का आस्रव है।

भावार्थ- सम्यक्त्वसहित जीव यदि देव आयु का बन्ध करते हैं, तो वे नियम से वैमानिक देवों में उत्पन्न होते हैं एवं सरागसंयम आदि के धारक जीव भी वैमानिक देवों में उत्पन्न होते हैं, इन्हीं सब का समुच्चय करने के लिए सूत्र में 'च' शब्द दिया गया है।

योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः॥ २२॥

सर्वार्थसिद्धि- 'च' शब्देन मिथ्यादर्शनपैशुन्यास्थिरचित्ततताकूटमानतुलाकरण-परनिन्दात्मप्रशंसादिः समुच्चीयते।

अर्थ- सूत्र में आये 'च' पद से मिथ्यादर्शन, चुगलखोरी, चित्त का स्थिर न रहना, मापने और तौलने के बाँट घट-बढ़ रखना, दूसरों की निन्दा करना और अपनी प्रशंसा करना आदि आस्रवों का समुच्चय होता है।

राजवार्तिक- 'च' शब्दोऽनुक्तसमुच्चयार्थः। ४। च शब्दः क्रियते अनुक्तास्रवस्य समुच्चयार्थः कः पुनरसौ? मिथ्यादर्शन-पिशुनताऽस्थिरचित्तस्वभावता-कूटमान-तुलाकरण-सुवर्णमणिरत्नाद्यनुकृति-कुटिलसाक्षित्वाऽङ्गोपाङ्गच्यावन-वर्णगंधरसस्पर्शान्यथा-भावन-यन्त्रपंजरक्रिया द्रव्यान्तरविषयसम्बन्धनिकृतिभूयिष्ठता-परिनिन्दात्मप्रशंसा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऽनृतवचन-परद्रव्यादान-महारम्भ-परिग्रह-उज्ज्वलवेषरूप-मद-परुषासभ्यप्रलाप-आक्रोश-मौखर्य-सौभाग्योपयोग-वशी-करणप्रयोगपरकुतूहलोत्पादनाऽलंकारादर-चैत्य-प्रदेशगन्ध-माल्यधूपादिमोषणविलम्बनोपहासइष्टि-कापाकदवाग्नि-प्रयोगप्रतिमायतनप्रतिश्रयारामोद्यानवि-नाशन-तीव्रक्रोधमानमायालोभपापकर्मोपजीवनादिलक्षणः।

अर्थ- 'च' शब्द अनुक्त के समुच्चय के लिए है। ४। अनुक्त अशुभनामकर्म के आस्रव का संग्रह करने के लिए 'च' शब्द का प्रयोग किया गया है। **शंका**- अनुक्त अशुभनाम कर्म के आस्रव के कारण कौन-कौन हैं? **समाधान**- मिथ्यादर्शन, पिशुनता, अस्थिरचित्तस्वभावता, कूटमानतुलाकरण (तराजू बाँट हीनाधिक रखना), कृत्रिम सुवर्ण, मणि, रत्न आदि बनाना, झूठी साक्षी देना, अंगोपांग का छेदन करना, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श का विपरीतपना अर्थात् स्वरूप विकृत कर देना, यन्त्र, पिंजरा आदि पीड़ाकारक पदार्थ बनाना, एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य का विषय सम्बन्ध करना, माया की बहुलता, परनिन्दा, आत्मप्रशंसा, मिथ्याभाषण, परद्रव्यहरण, महारम्भ, महापरिग्रह, उज्जवलवेष और रूप का घमंड करना, कठोर और असभ्य भाषण करना, क्रोधभाव रखने और अधिक बकवाद करने में अपने सौभाग्य का उपयोग करना, दूसरों को वश में करने के प्रयोग करना, दूसरे में कुतूहल उत्पन्न करना, बढ़िया-बढ़िया आभूषण पहनने की चाह रखना, जिनमन्दिर-चैत्यालय से गन्ध, माल्य धूप आदि को चुरा लेना, किसी की विडम्बना करना, उपहास करना, ईंट का भट्टा लगाना, वन में अग्नि लगाना, प्रतिमा का, प्रतिमा के आयतन का अर्थात् चैत्यालय का और जिनकी छाया में विश्राम लिया जाये ऐसे बाग-बगीचों का विनाश करना, तीव्र क्रोध, मान, माया, और लोभ करना तथा पापकर्म जिसमें हो ऐसी आजीविका करना इत्यादि बातों से भी अशुभनामकर्म का आस्रव होता है।

श्लोकवार्तिक- 'च' शब्दोऽनुक्तसमुच्चयार्थः तेन तज्जातीयाशेषपरिणामपरिग्रहः।

अर्थ- सूत्र में आया 'च' शब्द अनुक्त के समुच्चय के लिये है, जिससे योगवक्रता और विसंवादन की जाति-वाले सम्पूर्ण परिणामों का ग्रहण हो जाता है।

सुखबोधतत्त्वार्थवृत्ति- 'च' शब्दोऽनुक्तस्यैवंविधस्य परिणामस्य समुच्चयार्थः। स च मिथ्यादर्शनपिशुन-ताऽस्थिरचित्ततताकूटमानतुलाकरणपरनिन्दात्मप्रशंसादिः।

अर्थ- सूत्र में 'च' शब्द इसी तरह के अनुक्त परिणामों के समुच्चय के लिए दिया है यथा- मिथ्यादर्शन, चुगली, अस्थिरचित्तता, झूठे माप तौल रखना, पर की निन्दा और अपनी प्रशंसा करना इत्यादि सर्व ही अशुभ नाम कर्म के आस्रव जानने चाहिये।

तत्त्वार्थवृत्ति- चकारात् मिथ्यादर्शनं, पिशुनतायां स्थिरचित्तत्वं, कूटमानतुलाकरणं, कूटसाक्षित्वभरणम्, परनिन्दनम्, आत्मप्रशंसनम्, परद्रव्यग्रहणम्, असत्यभाषणम्, महारम्भमहापरिग्रहत्वम्, सदोज्ज्वलवेषत्वम् सूरूपतामदः, परुषभाषणम्, असदस्यप्रलपनम्, आक्रोशविधानम्, उपयोगेन सौभाग्योत्पादनम्, चूर्णादिप्रयोगेण परवशीकरणम मंत्रादिप्रयोगेण परकुतूहलोत्पादनम्, देवगुर्वादिपूजामिषे-णगन्ध-धूपपुष्पाद्यानयनम्, परविडम्बनम्, उपहास्यकरणम्, इष्टोच्चय-पाचनम्, दावानलप्रदानम्, प्रतिमाभंजनम्, चैत्यायतन-विध्वंसनम्, आरामखण्डनादिकम्, तीव्रक्रोध-मानमाया-लोभत्वम्, पापकर्मोपजीवित्वं चेत्यादयो-ऽशुभनामास्रवा भवन्ति।

अर्थ- सूत्र में आये 'च' शब्द से मिथ्यादर्शन, पिशुनता (चुगली करना), अस्थिरचित्तता, झूठे बाँट तराजू रखना, झूठी साक्षी (गवाही) देना, परनिन्दा, आत्मप्रशंसा, परद्रव्यग्रहण, असत्यभाषण, बहुत आरम्भ, बहुत परिग्रह, सदा उज्ज्वल वेष, रूपमद, परुषभाषण (असभ्यभाषण), असद् का प्रलपन (झूठी बकवास), आक्रोश, उपयोग पूर्वक सौभाग्योत्पादन, चूर्ण आदि के प्रयोग से दूसरों को वश में करना, मंत्र आदि के प्रयोग से दूसरों को कुतूहल उत्पन्न करना, देव गुरु आदि की पूजा के बहाने से गन्ध, धूप, पुष्प आदि लाना, दूसरों की विडम्बना (परेशान) करना, उपहास करना, ईंट पकाना, दावानल (जंगल की अग्नि) प्रज्वलित करना, प्रतिमा तोड़ना, जिनालय विध्वंस करना, बाग उजाड़ना तीव्र क्रोध, मान, माया और लोभ, पाप कर्मों से आजीविका करना आदि अशुभ नाम कर्म के आस्रव हैं।

भावार्थ- मिथ्यादर्शन, चुगलखोरी, अस्थिर-चित्त रहना, परनिन्दा, आत्मप्रशंसा, अंगोपांग का छेद करना, आदि योगों की कुटिलता और विसंवादवाले सभी प्रकार के परिणामों का ग्रहण करने लिए सूत्र में चकार पद दिया गया है अर्थात् ये सब भी अशुभ नाम के आस्रव के कारण हैं।

परात्मनिंदाप्रशंसे सदसद्-गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य॥ २५॥

सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक व श्लोकवार्तिक में 'च'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्द की व्याख्या नहीं की है।

सुखबोधतत्त्वार्थवृत्ति- 'च' शब्दोऽनुक्ततद्विस्तर-समुच्चयार्थः।

अर्थ- सूत्र में आया 'च' शब्द, जो नहीं कहे हैं उन आस्रवों का ग्रहण करने के लिए है।

तत्त्वार्थवृत्ति- चकाराज्जातिमदः कुलमदः बलमदः रूपमदः श्रुतमदः आज्ञामदः ऐश्वर्यमदः तपोमदश्चेत्यष्टमदाः, परेषामपमाननम्, परोत्प्रहसनम्, परप्रतिवादनम्, गुरूणां विभेदकरणम्, गुरूणामस्थानदानम्, गुरूणामवमाननम्, गुरूणां निर्भर्त्सनम्, गुरूणामजल्प्योटनम् गुरूणां स्तुतेरकरणम्, गुरूणामनभ्युत्थानं चेत्यादीनि नीचैर्गोत्रस्यास्रवा भवन्ति।

अर्थ- सूत्र मे आये 'च' शब्द से जातिमद, कुलमद, बलमद, रूपमद, श्रुतमद, आज्ञामद, ऐश्वर्यमद और तपमद ये आठ मद, दूसरों का अपमान, दूसरों की हँसी करना, दूसरों का परिवादन, गुरुओं का विभेदन (मतभेद उत्पन्न) करना, गुरुओं को स्थान न देना, गुरुओं का अपमान, गुरुओं की भर्त्सना, गुरुओं से असभ्य वचन कहना, गुरुओं की स्तुति न करना, और गुरुओं को देखकर खड़े नहीं होना आदि नीच गोत्र के आस्रव होते हैं।

भावार्थ- ज्ञान आदि का मद करने, दूसरों का अपमान तथा हँसी करने से एवं गुरुओं का तिरस्कार करने से भी नीच गोत्र का आस्रव होता है। इसी के समुच्चय के लिए चकार पद दिया है।

तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य॥ २६॥

सर्वार्थसिद्धि राजवार्तिक व श्लोकवार्तिक में 'च' शब्द की व्याख्या नहीं की है।

सुखबोधतत्त्वार्थवृत्ति- 'च' शब्दोऽनुक्ततद्विस्तर-समुच्चयार्थः।

अर्थ- 'च' शब्द अनुक्त के विस्तार के समुच्चय के लिए कहा गया है।

तत्त्वार्थवृत्ति- चकारात् पूर्वसूत्रोक्तचकारगृहीत-विपर्ययश्चात्र गृह्यते। तथाहि-

ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपोवपुः।
अष्टावाश्रित्य मानित्वं, स्मयमाहुर्गतस्मयाः॥

इति श्लोकोक्ताष्टमदपरिहरणम् परेषामनपमाननम्, अनुत्प्रहसनम्, अपरीवादनम्, गुरूणामपरिभवनमनुद्धट्टनं, गुणख्यापनम्, अभेदविधानं स्थानापर्णं, सन्माननं, मृदुभाषणं चाटुभाषणं चेत्यादयः उच्चैर्गोत्रस्यास्रवा भवन्ति।

अर्थ- चकार से पूर्व सूत्र में कहे चकार से गृहीत विपर्यय का यहाँ ग्रहण करना चाहिए। तथाहि-ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि तप और शरीर इन आठ का आश्रय लेकर गर्वित होने को गर्व से रहित गणधरादिक मद कहते हैं। इस प्रकार श्लोक में कहे गये अष्ट प्रकार के मदों का परिहार करना, दूसरों का अपमान न करना, हँसी न करना, परिवाद न करना, गुरुओं का तिरस्कार नहीं करना, गुरुओं से टकराना नहीं, गुरुओं के गुणों को कहना, भेद को नहीं कहना, स्थान समर्पित करना, सम्मान करना, मुदुभाषण करना और प्रियभाषण करना आदि से उच्चगोत्र का आस्रव होता है।

भावार्थ- ज्ञानादि का गर्व नहीं करना, दूसरों का अपमान नहीं करना, दूसरों की हँसी न करना तथा गुरुओं का तिरस्कार नहीं करना उनकी विनय करना ये सब भी उच्च गोत्र के आस्रव में कारण हैं।

श्री दि० जैन श्रमण संस्कृति संस्थान,
सांगानेर, जयपुर (राज.)

वाणीभूषण पं० बिहारी लाल मोदी का देहावसान

बड़ा मलहरा। जैन जगत के सुपसिद्ध विद्वान् कवि, लेखक तथा शंका समाधान कर्त्ता पं० बिहारीलाल जी मोदी का ७९ वर्ष की अवस्था में निधन हो गया है। आपने अनेक लेखों, कविताओं के साथ-साथ नियमसार का पद्यानुवाद किया है। आप प्रसिद्ध विद्वान् डॉ० नरेन्द्र कुमार जैन सनावद के श्वसुर जी थे। श्री बिहारीलाल मोदी के देहावसान पर म.प्र. की विधायक रेखा यादव, पूर्व विधायक कपूरचन्द्र घुवारा, विद्वत् परिषद के पूर्व अध्यक्ष डॉ० रमेश चन्द्र जैन मंत्री, डॉ० सुरेन्द्र जैन भारती बुरहानपुर, श्री शील डेवडिया बड़ा मलहरा सहित अनेक समाजसेवियों, विद्वानों तथा राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं ने गहरा दुःख व्यक्त करते हुए श्रद्धांजलि दी।

नरेन्द्रकुमार जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतिशय क्षेत्र मदनपुर का वास्तु वैभव

प्रतिष्ठाचार्य पं० विमलकुमार जैन सोंरया

विन्ध्याचल सरणि में २५-७६ अक्षांश और देशान्तर रेखाओं के मध्य उत्तरप्रदेश के झाँसी जिले में दक्षिण पूर्व के कोने में पू० क्षु० चिदानन्द जी के चातुर्मास का स्थान मंदिरों की नगरी मड़ावरा है, जहाँ एक छोटे से नगर में ११ विशाल गगनचुम्बी जिनालय एवं ९ देवालय अपनी गौरव गरिमा को लिये खड़े हैं, तथा धर्म की निर्मल छाया में संसारभ्रमित संतप्त प्राणियों को अक्षय सुख की प्राप्ति के हेतु संकेत रूप में बुलाते हुए प्रतीत होते हैं। इन मंदिरों के सातिशय दर्शन करने के बाद ऐसी जिज्ञासा का जन्म होता है, कि क्या इनके समीप कोई पुरातन सांस्कृतिक भग्नावशेष नहीं होंगे?

इस जिज्ञासा की परितृप्ति के लिए समीपवर्ती कतिपय खण्डहरों की झलक पर्याप्त होगी।

यहाँ की अतिशयता के विषय में अनेक ऐतिहासिक महत्त्वपूर्ण कथानक दन्तकथाओं के रूप में प्रचलित हैं, जो यहाँ की अपरिमेय अतिशयता को आलोकित किए हैं। परिणामत: यहाँ प्रतिवर्ष माघ माह में जैनों का वार्षिक मेला प्राचीन ऋषभदेव के विशाल मन्दिर के समीप लगता है। आज भी श्रद्धालुजन अतिशय क्षेत्र के रूप में इसकी वंदना कर अपने को धन्य कर रहे हैं।

मदनपुर- मड़ावरा ग्राम से दक्षिण की ओर १९ कि.मी. दूरी पर मदनपुर नाम का ऐतिहासिक ग्राम है। यह ९वीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक की वास्तुकला का जीता-जागता निदर्शन है। इस क्षेत्र में जहाँ एक ओर पाषाणकला के अवशेष बिखरे हैं, वहीं दूसरी ओर इस क्षेत्र की भूमि में अनेक धातुओं के भण्डार भी हैं, जिनके खनन से आज यह अंचल विकसित हो सकेगा।

इस स्थान से ५ मील दूर उत्तर में सोंरई नामक प्राचीन ऐतिहासिक ग्राम है। यहाँ प्राचीन गढ़ी, उन्नत मन्दिर आदि हैं। गत १० वर्षों के लम्बे अनुसन्धान के बाद इस परिणाम पर पहुँचे हैं, कि इस परिक्षेत्र में विपुल मात्रा में ताँबे व स्वर्ण धातु के भण्डार हैं।

सोंरई ग्राम से ४ मील उत्तर की ओर यहाँ कला का पुरातन तीर्थ मदनपुर है, जहाँ की ऐतिहासिकता कलात्मकता व प्राचीनता का यथार्थ चित्रण आपके सामने प्रस्तुत कर रहे हैं।

परिचय- जब इस ग्राम की सीमा में प्रवेश करते हैं, तो एक विशाल नाला है, जो पश्चिम से पूर्व की ओर बहता है। इसी के पास से पूर्व की ओर एक शासकीय विश्रामगृह है, आगे चलने पर दायें हाथ की ओर आरक्षी केन्द्र का कार्यालय है। आगे दक्षिण पूर्व की ओर एक प्राचीन तालाब का बाँध सामने दिखता है। और उसी से लगे हुए शान्त उत्तुंग पर्वतों के अंचल में दो विशाल भवन दिखते हैं, जो आल्हा-ऊदल की बैठक के नाम से ख्यात हैं।

ये दोनों भवन पुरातत्त्व विभाग के अधिकार में हैं। मदनपुर ग्राम के पूर्व दक्षिण में स्थित एक ऊँचे स्थान पर जमीन तल से १० फीट पत्थरों की कुर्सी पर, इनका निर्माण किया गया है। पहले १० खम्बों से युक्त एक चौकोर खुली बैठक है, जिसमें दक्षिण उत्तर की ओर लगे पत्थरों पर शिलालेख अंकित हैं, जो अस्पष्टता के कारण आसानी से नहीं पढ़े जा सकते। इसके दक्षिण में लगभग १० फीट की दूरी पर इसी प्रकार का दूसरा भवन बना है, जिसमें ३ खण्ड हैं। मध्य में पूर्व-पश्चिम की ओर से खुला एक कमरा है, जो दक्षिण व उत्तर की ओर बने हुए गृहों से संबंधित है। १७ फीट चौड़े और १३½ फीट लम्बाई से इन गृहों का निर्माण है। प्रत्येक गृह के ऊपर छत के रूप में एक ही पत्थर का उपयोग किया गया है जो कि १३½ फीट लम्बा ८½ फीट चौड़ा और १० इंच मोटा है। इस पत्थर पर सुन्दर आकार की पच्चीकारी से युक्त बेल, फूल व देवी-देवता के रूप बने हुए हैं।

अगल-बगल की बैठकों में तीन तरफ १० फीट ८ इंच ऊँचे, २ फीट ८ इंच चौड़े और १० फीट लम्बे बेंचनुमा पत्थर पड़े हैं। इन पत्थरों में खाँचा देकर १ फीट १० इंच ऊँची, ३ इंच मोटी और लगभग ५ फीट लम्बे पत्थरों की पीठिका (तकिया) बाहर की दीवालों के समानान्तर लगी है।

मध्य के गृह की चारों दिशाओं में तीन-तीन खम्भे खड़े हैं। पूर्व दिशा से इन बैठकों में आने के लिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१० सीढ़ियाँ चढ़नी होती हैं। इन कमरों के सभी खम्भे विशालकाय और तत्कालीन पाषाण कलाकृति से अलंकृत हैं, प्रत्येक गृह का एक खम्भा एक दूसरे के रूप, आकार में समानता लिए हुए है। बीच के गृह के चारों पायों पर प्रशस्तियाँ अंकित हैं। इन भवनों के प्रत्येक पत्थर पर तत्कालीन वास्तुकला के कलात्मक निदर्शन हैं।

इन भवनों के चारों तरफ बड़े विशालकाय नाना प्रकार की कलाकृति युक्त अनेक पत्थर पड़े हैं, जिनको मिलाकर एक ऐसा ही भवन बनाया जा सकता है। दूसरे बैठक के पश्चिम में ३ मूर्तियाँ नृत्य करती हुईं अंकित हैं, इनके नीचे पूर्व की ओर पत्थर की खान है। संभवत: इन भवनों में लगे पत्थर यहीं से निकाले गये होंगे।

इतिहास- ग्राम में प्रवेश करते हैं, तो देखते हैं कि अनेक भवन आज भी अतीत के गीत मूकभाषा में गा रहे हैं। ग्राम में एक सुन्दर वैष्णव मंदिर मिलता है, इसके बाद दीवान परिवार का निवास स्थल है। इनके पूर्वज दीवान प्यारेजू तत्कालीन महाराजा वखतवली सिंह के सेनानी थे। सन् १८५८ में गदर के समय अँग्रेजों के कर्नल हफरोज ने शाहगढ़ नरेश राजा वखतवली सिंह पर इस ओर से आक्रमण किया था। दीवान प्यारेजू के पौत्र दीवान गजराज सिंह प्राचीन पुरपट्टन पर बहुत अनुरक्त हैं। और समाज को इनके जीणोद्धार के लिए प्रेरित करते रहते हैं।

जैन मन्दिर- मध्य ग्राम में एक शिखरबन्द विशाल पुरातन जैन मंदिर है। यह जीर्णशीर्ण हो गया है। अन्दर २४ पत्थर के खम्भों पर आधारित पूरे मंदिरं की छत है, मध्य के छह खम्भों के बीच दीवालें खड़ी करके मंदिर का गर्भालय बना हुआ है। गर्भालय के ऊपर मंदिर की लगभग ४० फीट ऊँची शिखर बनी हुई है। वेदी प्राचीन है। जिसमें किसी प्रकार का नवनिर्माण नहीं किया गया है। उत्तर में एक द्वार है, जिसे बंद कर दिया गया है। दक्षिण में एक द्वार है, जिसके आगे १० खम्भों की खुली दालान है। मंदिर के अंदर की परिक्रमा संकीर्ण व अन्धकारमय है। मंदिर के आस-पास अनेक खण्डहर भवन हैं।

मंदिर में ६ सफेद पत्थर की पद्मासन मूर्तियाँ हैं। जिसमें सं० १५४८ की एक प्रतिमा पद्मप्रभु की है। एक सं० १५९५ वैशाख शुक्ला ३ को प्रतिष्ठापित सहस्रफणी पार्श्वनाथ की प्रतिमा है। शेष २ सत्रहवीं व २ अठारहवीं शताब्दी की हैं। ६ प्रतिमाएँ धातु की हैं। जिनमें २ सोलहवीं, १ सत्रहवीं एवं ३ अठारहवीं शताब्दी की हैं। सभी पर प्रशस्तियाँ अंकित हैं। मन्दिर में पूर्ण अव्यवस्था व जीर्ण-शीर्णता के कारण रौनक नाम मात्र की नहीं है। अब मन्दिर का जीर्णोद्धार किया गया है तथा चौबीस प्रतिमाएँ विराजमान की गई हैं।

पर्वत मन्दिर

१. **पचमढ़**- ग्राम से उत्तर की ओर पर्वत श्रेणी पर लगभग ५०० मीटर की दूरी पर यह स्थान है। जहाँ पर एक विशाल चबूतरे पर पाँच मढ़ (मन्दिर) बने हुए हैं। चबूतरे के चारों कोनों पर चार एवं एक बीच में बना हुआ है। प्रत्येक मढ़ में एक-एक खड्गासन प्रतिमा देशी पत्थर की ५-५ फीट की ऊँची दीवाल से जोड़कर खड़ी की गई है। कुछ अज्ञान व्यक्तियों द्वारा उन पर फैंके गये पत्थरों के कारण शरीर पर निशान बने हुए हैं। कहीं-कहीं अंगभंग भी हो गया है। प्रत्येक मूर्ति पर शिलालेख अंकित है। २ मूर्तियाँ संवत् १३१२ की हैं, एक इससे भी प्राचीन है। जिसका संवत् पढ़ने में नहीं आया, शेष २ सं० १६१८ की हैं। चारों मढ़ों की ऊँचाई १५ फीट व बीच के मढ़ की ऊँचाई २० फीट है। सभी का मुख पूर्व की ओर है। इन मूर्तियों के जीर्णोद्धार का कार्य सन् १९८६ में कराया गया तथा सन् १९८९ में प्राणप्रतिष्ठा कराकर पूजन योग्य हुईं।

२. **शान्तिनाथ मंदिर**- जमीन तल से ३ फीट ऊँची आसन पर एक विशालकाय शान्तिनाथ का मन्दिर है, जो अहारक्षेत्रीय पुरातन शान्तिनाथ के एवं देवगढ़ की पहाड़ी पर स्थित शान्तिनाथ मंदिर की स्मृति कराता है। यह २८ फीट ऊँचा, १८ फीट लम्बा व १३ फीट चौड़ा है। मंदिर के शिखर में एक सुन्दर कोठरी है, मंदिर से लगा हुआ मूलद्वार के सामने १३ वर्ग फुट का एक चबूतरा है, जिस पर पत्थर के पायों पर बरामदानुमा बना हुआ है। मंदिर का मुख पश्चिम की तरफ पचमढ़ों की ओर है। मंदिर में प्रवेश करने के लिए ८ फुट ऊँचा, ४ फुट चौड़ा द्वार है। द्वार के ऊपरी भाग में एक पद्मासन मूर्ति बैठी हुई है। इस द्वार से प्रवेश कर ४½ फुट गहरे मंदिर का गर्भालय बना है। इसमें ३ मूर्तियाँ खड्गासन ध्यानस्थ मुद्रा में अष्ट प्रातिहार्य युक्त खड़ी हैं। मध्य में १० फुट उत्तुंग भगवान् शान्ति प्रभु की खण्डित प्रतिमा है, जो सं. १२ सौ की है। मध्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूर्ति के दाएँ बाएँ ७ फीट उत्तुंग क्रमशः (संवभतः) महावीर व अरहनाथ की मूर्तियाँ हैं। सन् १९७८ में खण्डित प्रतिमाओं के स्थान पर नवीन कुन्थुनाथ, अरहनाथ की प्रतिमाएँ स्थापित की गईं। गर्भालय-फर्श अत्यन्त छिन्न-भिन्न हो गया है। इसमें विशालकाय दो मूर्तियों के धड़ पड़े थे। और इनके शिर मंदिर के बाहर पड़े हुए हैं। एक २½ वर्गफुट का चौमुखी मेरु गर्भालय में रखा है मंदिर के उत्तर की ओर बाहर एक पत्थर पड़ा है, जिस पर १-१ फीट की १५ मूर्तियाँ बनी हैं। इस मंदिर से कोई ३०० मीटर की दूरी पर एक खण्डित मढ़ मालिन बाबा का मंदिर नाम से है व आगे पर्वत पर चम्पोमढ़ है।

३. **खण्डित मढ़**- यह मढ़ आज भी अपनी खण्डित अवस्था में टीले के रूप में पड़ा हुआ है। इसके अन्दर स्थित ७ फीट उत्तुंग खड़ी मूर्ति आज भी उस टीले में घुटनों तक दबी हुई खड़ी है।

४. **चम्पो मढ़**- खण्डित मढ़ से उत्तर की ओर कोई दो फर्लांग आगे चम्पो-मढ़ मिलता है। यह मढ़ पुरातन कला युक्त मंदिर है, जो ११वीं शताब्दी की वास्तु-कला का नमूना है। इस मढ़ के समीप जाने के लिए बीहड़ जंगल की झाड़-झाड़ियों के बीच में होकर जाना पड़ता है। इस मढ़ के चारों ओर पत्थर व कटावदार तोरणद्वार एवं मूर्तियों के अवशेष पड़े हैं। इस मढ़ की कुर्सी जमीन तल से ४ फीट ऊँची है। मढ़ के आगे चार विशाल पायों पर खुली पत्थर की ऊँची दालान है। और इसके अलावा नाना तरह के देवी-देवताओं, पशु-पक्षियों, देवविमानों और मूर्तियों तथा तत्कालीन शैली के कलात्मक कटाओं से युक्त एक विशाल भव्याकर्षक पत्थर का तोरणद्वार बना है। द्वार के ऊपरी हिस्से पर यक्ष-यक्षिणी व उनके साथ अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियाँ टंकित हैं। नीचे ३ पद्मासन जिन भगवान् की मूर्तियाँ है। उनके तोरणद्वार के दोनों तरफ आस-पास में रास नृत्य करती हुईं देवी-देवियाँ व नीचे दोनों ओर ३-३ इन्द्र बने हैं। देहरी पर ४ दृश्य ऐसे हैं, जिनमें हाथी-सिंह के युद्ध का रूप दर्शाया गया है। इसका मुख पूर्व की ओर है। तोरणद्वार से अंदर की ओर ४½ फीट नीचे गर्भालय की जमीन है, जिसमें ४ जीना लगे हुए हैं, अष्ट प्रातिहार्य युक्त ३ मूर्तियाँ खड़ी हैं। बीच में ७ फीट ७ इंच की भगवान् शान्तिनाथ की मूर्ति खड़ी है, जिसका १ फीट ८ इंच का दिव्य कलात्मक आसन है, उसके नीचे १ वर्ग फुट का प्रशस्ति-शिलालेख है। शिलालेख से स्पष्ट है कि इसकी प्रतिष्ठा फागुन सुदि १० संवत् १२०४ को हुई थी। इसके दायें-बायें ७-७ फीट की वर्द्धमान स्वामी की प्रतिमाएँ हैं। इनके चरणों के समीप २½-२½ फीट के ६ इन्द्र खड़े हैं। जो चमर ढोरते दिखते हैं। मूर्तियों के हाथ खण्डित है। मूर्तियों के ऊपर दीवाल में २½ वर्ग फीट की दो पद्मासन मूर्तियाँ लाल पत्थर में चस्पा हैं।

चम्पो-मढ़ के दक्षिण की ओर एक अर्द्ध-भग्नावशेष दूसरा मढ़ है, जिसमें शान्ति, कुन्थु, अरह की मनोज्ञ देशी पत्थर की प्रतिमाएँ खड़ी हैं। तीनों पर प्रशस्तियाँ हैं। मध्य की मूर्ति ८ फीट ऊँची शेष दो ५½ फीट ऊँची हैं। दोनों के हाथ टूटे हैं। मढ़ का छत धराशायी हो जाने से बाहर से मूर्तियाँ, अर्ध देह के साथ दिखाई देती हैं। इसके चारों तरफ ८½ फीट ऊँची मात्र दीवालें खड़ी हैं। मढ़ का गर्भालय ६ फुट चौड़ा व ६½ फुट लम्बा है। प्रवेश द्वार यथावत् खड़ा है, जो आकार-प्रकार में ४½×३½ है। ये दोनों मढ़ पर्वत श्रेणी के तल से ४ फुट ऊँचें टीले पर निर्मित हैं। इस मढ़ के चारों तरफ भयावह बीहड़ जंगल खड़ा है।

पुरपट्टन नगर

चम्पो-मढ़ के उत्तर-पूर्व की ओर अत्यंत घने जंगल के बीच लगभग २ फर्लांग आगे अनेक भवनों के खण्डहर मौजूद हैं, जिन्हें 'पुर-पट्टन' नाम से कहा जाता है। कथा इस प्रकार है- राजा मदनसेन इस नगर के ख्याति-प्राप्त राजा थे। जिनकी आमोती-दामोती नाम की अत्यंत रूपवती रानियाँ थी। कहा जाता है कि पाटन नगर में ३६५ कोरी (जुलाहे) रहते थे, जो अत्यंत कुशल वस्त्र निर्माता थे। वर्ष में एक कोरी दो साड़ियाँ तैयार करता था। और दोनों रानियाँ प्रतिदिन एक-एक साड़ी पहनती, फिर गरीबों को दूसरे दिन दान कर देती थीं। इन कोरी परिवारों की आजीविका का निर्वाह राज्य की ओर से होता था।

अक्षय प्रतिष्ठा और महानतम प्रतिभा के कारण बुन्देलखण्ड में राजा मदनसेन और रानी आमोती-दामोती की इतनी लोकप्रियता बढ़ी कि इनके नाम की बुन्देलखण्ड के घर-घर में आदर के साथ पूजा होने लगी।

प्रतिवर्ष क्वांर बदी अष्टमी के दिन महालक्ष्मी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूजन के समय पाटनपुर के राजा-रानियों का मंगल स्मरण किया जाता है, जो इस प्रकार है-

''आमोती दामोती रानी पुरपट्टन गाँव मदनसेन से राजा वम्मन-वरुआ कहे कहानी, सुनो हो महालक्ष्मी देवी रानी, हमसे कहते तुमसे सुनते सोला बोल की एक कहानी।''

संभवत: पुरपट्टन के उजड़ जाने पर मदनसेन राजा की स्मृति में १७वीं शताब्दी के बाद नीचेवाली बस्ती का नाम मदनपुर पड़ा। किन्तु पाटनपुर नगर की संस्कृति, सभ्यता और धार्मिक परम्परा के प्रतीक भग्नावशेष आज भी अक्षय खड़े हैं।

मोदी मढ़- पाटनपुर नगर के दक्षिण की ओर चम्पोमढ़ से कोई दो फर्लांग की दूरी पर यह मोदी-मढ़ है। इसका मुख्य द्वार पूर्व की ओर है। इसका शिखर जीर्णशीर्ण व खण्डहर अवस्था में है। अंदर गर्भालय का फर्श उखड़ा हुआ पड़ा है। मंदिर के आगे कोई छायावान वृक्ष नहीं है। मढ़ की दीवाल ५½ फुट चौड़ी है और इसकी ऊँचाई लगभग २५ फुट है। इसके अंदर ३ मूर्तियाँ हैं। मध्य में शान्तिनाथ की ७ फुट उत्तुंग एवं दायें-बायें कुन्थु और अरह स्वामी की प्रतिमाएँ हैं। तीनों पर शिलालेख हैं, जिन पर फागुनसुदि (शुक्ला) ४ सं. १६८८ अंकित है। इसका मुख्य द्वार ६½ फुट ऊँचा और ४ फुट चौड़ा है।

इसके चारों तरफ ४ मढ़ होने के अवशेष टीलों के रूप में पड़े हैं। दायेंवाला मढ़ धराशायी हो गया है, परन्तु भगवान् ऋषभदेव की ८ फुट उत्तुंग खड्गासन मूर्ति एक वृक्ष की जड़ के आधार से झुकी हुई खड़ी है। सैकड़ों वर्षों की वर्षा और धूप के कारण इस पर कालख व काई जम गयी है, फिर भी मूर्ति सर्वांग सुन्दर है। शेष तीन स्थानों की मूर्तियों के चिह्न नहीं है। सम्भव है इन स्थानों की मूर्तियाँ इन मढ़ों के साथ धराशायी दबी पड़ी हों।

मढ़खेरा- मड़ावरा के दक्षिण-पश्चिम कोण में बम्हौरी ग्राम से लगा यह स्थान रोनी नदी के किनारे पर है। यहाँ अनेक प्राचीन कलामय मंदिर थे। जिनमें अब दो के भग्नावशेष और शेष के आसन के चिह्न मात्र रह गये हैं। यह स्थान भी अंचल का एक अनुपम कला केन्द्र रहा होगा।

प्रधान सम्पादक-
'वीतरागवाणी' मासिक टीकमगढ़ (म.प्र.)

काँच के घट हम

मनोज जैन 'मधुर'

काँच के घट हम,
किसी दिन फूट जायेंगे।

काल काठी काटती,
दिन रात आरी।
काल प्रत्यंचा लिए,
कर में हमारी।

प्राण के शर देह धनु से,
छूट जायेंगे।

देह नौका भव जलधि से,
तारती है।

मोह हो तो रूप अगणित,
धारती है।

उम्र के तट हम किसी दिन,
टूट जायेंगे।

पुण्य का भ्रम बेल मद की,
सींचता है।
पाप भव के जाल में,
मन खींचता है।
नट विषय के क्या पता कब,
लूट जायेंगे।

सी. एस.-१३, इन्दिरा कॉलोनी
बाग उमराव दूल्हा, भोपाल-१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिज्ञासा-समाधान

पं० रतनलाल बैनाड़ा

जिज्ञासा- अशुभ तैजस का द्वीपायन मुनि का उदाहरण, तो हमको ज्ञात है। क्या कोई अन्य उदाहरण भी शास्त्रों में मिलते हैं तो बतायें।

समाधान- अशुभ तैजस समुद्घात के कुछ अन्य उदाहरण भी प्रथमानुयोग के शास्त्रों में उपलब्ध होते हैं। जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं-

भाव पाहुड गाथा-४९ की टीका में बाहु मुनि की कथा दी गई है। जिसमें लिखा है, ''पश्चात् एक बाहु नामक मुनि उस नगर में आए, लोगों ने उनको रोका भी कि इस नगर में राजा दुष्ट है, उसने पाँच सौ मुनियों को घानी में पिलवा दिया है, आपको भी वैसा ही करेगा। उन लोगों के वचन सुनकर बाहु मुनि रुष्ट हो गए, जिससे उन्होंने अशुभ तैजस समुद्घात के द्वारा राजा और मंत्री सहित समस्त नगर को भस्म कर डाला और स्वयं भी मर गया। मरकर वह रौरव नामक सातवें नरक के बिल में जा पड़ा।''

समुद्रदत्तचरित्र (रचियता पं० भूरामल जी शास्त्री, आ० ज्ञानसागर जी महाराज) में पृष्ठ २७ पर इस प्रकार कहा है- ''वज्रसेन के दिल पर इसका यह प्रभाव हुआ कि उसने विरक्त होकर जिनदीक्षा ले ली और अंतरंग से नहीं, किन्तु ऊपर से उसने घोर तप करना शुरू कर दिया। तप करते-करते वह एक बार स्तवकगुच्छ नगर के बाहर आकर बैठा था कि, उसे देखकर क्रोध में भरे हुए लोगों ने उसे लाठी वगैरह से मारना शुरू किया। इससे क्रोध में आकर उस मुनि ने अपने बाँये कंधे से निकले हुए तैजस पुतले से, पहले उस सारे नगर को जलाया और बाद में खुद भी उसी से भस्म होकर नरक गया।''

पद्म पुराण भाग-२, पृष्ठ-२०४ पर इस प्रकार कहा है- ''राजा की आज्ञा के अनुसार गणनायक के साथ-साथ जितना मुनियों का समूह था, वह सब पापी मनुष्यों के द्वारा घानी में पिलकर मृत्यु को प्राप्त हो गया। उस समय एक मुनि कहीं बाहर गये थे, जो लौटकर उसी नगरी की ओर आ रहे थे। उन्हें किसी दयालु मनुष्य ने यह कहकर रोका कि हे निर्ग्रन्थ! तुम, निर्ग्रन्थ अवस्था में नगरी में मत जाओ अन्यथा घानी में पेल दिए जाओगे। समस्त संघ की मृत्यु के दुःख से वे मुनि क्षण भर के लिए निश्चल हो गए। उन निर्ग्रन्थ मुनिरूपी पर्वत की शांतिरूपी गुफा से सैकड़ों दुखों से प्रेरित हुआ क्रोधरूपी सिंह बाहर निकला। उनके नेत्र के लाल-लाल तेज से आकाश ऐसा व्याप्त हो गया मानों संध्या हो गई हो। क्रोध से तपे हुए मुनिराज के समस्त शरीर में पसीने की बूँदे निकल आईं और उनमें लोक का प्रतिबिम्ब पड़ने लगा। उन मुनिराज ने मुख से **'हा'** शब्द का उच्चारण किया, उसी के साथ मुख से धुँआ निकला जो कालाग्नि के समान अत्यधिक कुटिल और विशाल था। उस धुँए के साथ ऐसी ही निरन्तर अग्नि निकली जिसने ईधन के बिना ही समस्त देश को भस्म कर दिया। कुछ भी शेष नहीं बचा। महान् संवेग से युक्त मुनिराज ने चिरकाल से जो तप संचित कर रखा था, वह क्रोधाग्नि में दग्ध हो गया।

अन्य कोई और प्रमाण भी यदि पाठकों को किसी शास्त्र में पढ़ने को मिलें, तो अवश्य बताने का कष्ट करें।

जिज्ञासा- श्री, ह्री आदि देवियाँ व्यंतर जाति की हैं या अन्य जाति की?

समाधान- श्री, ह्री आदि देवियाँ व्यंतर जाति की देवियाँ हैं। आगम प्रमाण इस प्रकार हैं-

१. तिलोयपण्णत्ति अधिकार-४ में कहा है-

तद्दह-पउमस्सोवरि, पासादे चेट्ठदे य धिदिदेवी।
बहु-परिवारेहिं जुदा, णिरुवम-लावण्ण-संपुण्णा॥ १७८५॥
इगि-पल्ल-पमाणाऊ, णाणाविह-रयण-भूसिय-सरीरा।
अइरम्मा बेंतरिया, सोहम्मिंदस्स सा देवी॥ १९८६॥

अर्थ- उस द्रह संबंधी कमल के ऊपर स्थित भवन में बहुत परिवार से संयुक्त और अनुपम लावण्ययुक्त धृतिदेवी निवास करती है॥ १७८५॥

अर्थ- एक पल्य आयु की धारक और नाना प्रकार के रत्नों से विभूषित शरीरवाली अति रमणीय यह व्यन्तरिणी सौधर्मेन्द्र की देवकुमारी (आज्ञाकारिणी) है॥ १७८६॥

श्री उत्तरपुराण पृष्ठ १८८ पर इसप्रकार कहा है-

तेषामाद्येषु षट्सु स्युस्ताः श्री-ह्री-धृति-कीर्तयः।
बुद्धिलक्ष्मीश्च शक्रस्य व्यन्तर्यो वल्लभाङ्गनाः॥ २००॥

अर्थ- इनमें से आदि के छह तालाबों में क्रम से श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी ये इन्द्र की वल्लभा व्यंतर देवियाँ रहती हैं।

३. पं० माणिकचन्द्र जी कौन्देय ने तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक के पंचमखण्ड के अध्याय-३ के सूत्र २० **'तन्निवासिन्यो---'** की हिन्दी टीका में श्री आदि देवियों को, व्यंतर जाति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की तथा ब्रह्मचारिणी लिखा है।

४. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष भाग-३, पृष्ठ-६१४ पर श्री आदि देवियों को तथा अन्य दिक्कन्याओं को व्यंतर देवियों के अन्तर्गत लिया है।

जिज्ञासा- राजा श्रेणिक को नरकायु का बन्ध कब और क्यों हुआ? कृपया बतायें।

समाधान- राजा श्रेणिक के नरकायुबन्ध के कारणों के विषय में आचार्यों के दो मत उपलब्ध होते हैं। पहला मत तो यह है कि उन्होंने जब यशोधर महाराज के गले में सर्प डाला, तब उनको सप्तम नरक की आयु का बन्ध हुआ था। तथा दूसरे मत के अनुसार अत्यधिक आरम्भ और परिग्रह के कारण उनको नरकायु का बन्ध हुआ था। प्रथम मत के कुछ प्रमाण इसप्रकार हैं-

१. संस्कृत श्रेणिकपुराण (रचियता आ० शुभचन्द्र) के नवम सर्ग, श्लोक नं० १५९-६० में इसप्रकार कहा है-

''मुनि को मारने के लिए राजा श्रेणिक जा ही रहे थे कि अचानक उन्हें एक सर्प, जो कि अनेक जीवों का भक्षक एवं ऊँचा फण किए हुए था, दीख पड़ा। उसे अनिष्ट का करनेवाला समझ महाराज ने शीघ्र मार डाला और अतिक्रूर परिणामी होकर पवित्र मुनि यशोधर के गले में डाल दिया। राजा श्रेणिक के उस समय अति रौद्र परिणाम थे। उन्हें तत्काल ही तेतीस सागर की आयु, पाँच सौ धनुष का शरीर तथा विद्वानों के भी वचन के अगोचर महादु:ख-वाले, महातमप्रभा नाम के सप्तम नरक का आयुबन्ध हो गया।''

हिन्दी के श्रेणिकचरित्र संपादक- नन्दलाल जैन विशारद, प्रकाशक जैन साहित्य सदन देहली पृष्ठ-१२४ पर भी इसी प्रकार का वर्णन प्राप्त होता है।''

आचार्यों के दूसरे मत के निम्न प्रमाण हैं-

१. उत्तरपुराण (सर्ग-७४, पृष्ठ-४७२, श्लोक-४३४-४३६) में इस प्रकार कहा है- ''राजा श्रेणिक का प्रश्न समाप्त होने पर गणधर स्वामी ने कहा कि तुमने इसी जन्म में पहले भोगों की आसक्ति, तीव्र मिथ्यात्व का उदय, दुश्चरित्र और महान् आरम्भ के कारण, जो बिना फल दिए नहीं छूट सकती, ऐसी पापरूप नरकायु का बन्ध कर लिया है।'

२. कवि पुष्पदत विरचित महापुराण सर्ग ९८/५/१५ में इसप्रकार कहा है - ''भारी आरम्भ और परिग्रह से युक्त घने मिथ्यात्व और तीव्र कषाय के कारण, हे सुभट! तुमने नरकायु का बंध कर लिया है।''

३. श्री सकलकीर्ति विरचित 'वीरवर्धमानचरितम्', ज्ञान तीर्थ प्रकाशन, पृष्ठ-२११ पर इसप्रकार कहा है- ''तीव्र मिथ्यात्वभाव के द्वारा आज से पूर्व ही तूने इसी जीवन में हिंसादि पाँचों पापों के आचरण से, बहुत आरम्भ और परिग्रह से, अत्यन्त विषयासक्ति से और सत्य धर्म के बिना बौद्धों की भक्ति से नरकायु को बाँध लिया है।''

४. श्री हरिवंशपुराण पृष्ठ-२२ (ज्ञानपीठ प्रकाशन) पर इस प्रकार कहा है- ''राजा श्रेणिक ने पहिले, बहुत आरम्भ और परिग्रह के कारण सातवें नरक की जो उत्कृष्ट स्थिति बाँध रखी थी, उसे क्षायिक सम्यग्दर्शन के प्रभाव से प्रथम पृथ्वीसंबंधी ८४ हजार वर्ष की मध्यम स्थिति रूप कर दिया।''

स्वाध्यायी जनों के द्वारा उपर्युक्त दोनों मत ही संग्रह करने के योग्य हैं।

प्रश्नकर्ता- ब्र० अनूप जैन, शास्त्री, मुंबई।

जिज्ञासा- वर्तमान में बहुत से आचार्य और मुनि, श्रावक के यहाँ तय करके आहार लेते हुए देखे जा रहे हैं? क्या ऐसा करना आगम के अनुसार उचित है?

समाधान- आपकी दर्द भरी जिज्ञासा बिल्कुल उचित है। साधु-संस्था का शिथिलाचार समुद्र के ज्वार-भाटे की तरह बढ़ता ही जा रहा है। पिछले वर्ष तो एक सज्जन ने अखबार में ही यह विज्ञापन दिया था कि दिनांक --- को आचार्य --- का आहार हमारे यहाँ होगा। जो भी साधर्मी भाई आचार्य --- को आहार देने के भाव रखते हों, वे हमारे यहाँ ९ बजे तक पधारें।

जुलाई २००९ में हमारे कुछ साथियों के पास एक सज्जन का फोन आया था कि परसों आचार्य ---- आहार के लिए हमारे यहाँ आयेंगे। आप सादर आमंत्रित हैं।

कुछ आचार्यों की तो आहार देनेवालों की सूची एक सप्ताह पूर्व ही तय हो जाती है। जब आचार्यों का ऐसा आचरण देखा जा रहा है, तब मुनियों की क्या चर्चा की जाये?

आचार्य शुभचन्द्र द्वारा विरचित, 'संस्कृत श्रेणिक पुराणम्', सर्ग-१० का निम्नलिखित प्रकरण, हम आपकी जिज्ञासा के समाधान में दे रहे हैं, इसे पढ़कर आप स्वयं निर्णय करें कि ऐसे आचार्य या मुनियों का इस प्रकार आहार लेना आगमसम्मत है या नहीं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूपः पुनर्जगौ वाक्यं नो चेन्मम वचः कुरु।
ममाहारकृते गेहया गंतव्यं यथा तथा॥ ५८॥

अर्थ- हे मुनिनाथ! यदि आप तप छोड़ना नहीं चाहते, तो कृपा कर आप मेरे गृह में भोजनार्थ जरूर आयें। राजा के ये वचन भी मोह परिपूर्ण जान मुनिवर सुषैण ने कहा-

राजन्निति न युक्तं में कृताहारग्रहादिकम्।
यतीनां योगयुक्तानां तपः कृतविवर्जनम्॥ ५९॥
मनोवचनकायैश्च यत्कृतं कारितं पुनः।
अनुमोदितमेवात्र हेयं हेयं च भोजनम्॥ ६०॥
प्रासुकं यत्स्वयं जातं गेहिनां धाम्नि निश्चितं।
अनुदिष्टं समादेयं जेमनं यतिभिः सदा॥ ६१॥
तिथि र्न विद्यते येषां येषामामंत्रणं न च।
कथ्यंतेऽतिथयस्तत्र निघस्त्रे तिथिवर्जिते॥६२॥
कृतकारितसंमौदैन्यादं गृह्णन्ति ये शठाः।
यतयो नात्र चोच्यंते रसनाहतमानसाः॥ ६३॥
अत इत्थं न वक्तव्यं भूप! भिक्षादिहेतवे।
अन्यद्यद्रोचते तुभ्यं कथ्यमानं करोमि तत्॥६४॥

अर्थ- हे राजन्! में इस काम को करने के लिए सर्वथा असमर्थ हूँ। दिगम्बर मुनियों को इस बात की पूर्णतया मनाई है। वे संकेत पूर्वक आहार नहीं ले सकते। आप निश्चय समझिये, जो भोजन मन-वचन-काय द्वारा स्वयं किया, एवं पर से कराया गया, व पर को करते देख 'अच्छा है' इत्यादि अनुमोदना पूर्वक होगा, दिगम्बर मुनि उस भोजन को कदापि न करेंगे। उनके योग्य वही भोजन हो सकता है, जो प्रासुक होगा तथा उनके उद्देश्य से न बना होगा तथा विधिपूर्वक होगा।

दिगम्बर मुनि अतिथि हुआ करते हैं। उनके आहार की कोई तिथि निश्चित नहीं रहती। मुनि निमंत्रण-आमंत्रण-पूर्वक भी भोजन नहीं कर सकते। आप विश्वास रखिए, जो मुनि निश्चित तिथि में निमंत्रणपूर्वक आहार करनेवाले हैं, कृत, कारित, अनुमोदना का कुछ भी विचार नहीं रखते, वे मुनि नहीं हैं, जिह्वा के लोलुपी हैं एवं वज्र मूर्ख हैं। यदि मेरे योग्य जैनशास्त्र के अनुसार कोई कार्य हो तो में कर सकता हूँ।

सर्वार्थसिद्धि (७/२१) की टीका में इस-प्रकार कहा गया है- ''संयम का विनाश न हो, इस विधि से जो आता है वह अतिथि है या जिसके आने की कोई तिथि नहीं, उसे अतिथि कहते हैं। तात्पर्य यह है कि जिसके आने का कोई काल निश्चित नहीं है उसे अतिथि कहते हैं।''

उपर्युक्त आगम-कथनानुसार किसी भी मुनि को निमंत्रणपूर्वक नहीं जाना चाहिए तथा किसी भी दाता को निमंत्रण देने का प्रयास नहीं करना चाहिए। (टीकाकार- आचार्य अभिनंदनसागर महाराज)

१/२०५, प्रोफेसर्स कॉलोनी
आगरा-२८२ ००२, उ० प्र०

श्रेष्ठी श्री सुमेरमल जी पाण्ड्या आगरा का महाप्रयाण

प्रसिद्ध समाजसेवी एवं उद्योगपति श्रेष्ठी श्री सुमेरमल जी पाण्डया का अपने आगरा निवास स्थान में दिनांक ६ जुलाई २००९ दिन सोमवार को ब्रह्ममुहूर्त में अष्टान्हिका पर्व की चतुर्दशी के दिन धर्मध्यानपूर्वक देहावसान हो गया। आपके निधन के समाचार से संपूर्ण जैनसमाज शोक संतप्त हो उठा। आपके पार्थिव शरीर के दाह-संस्कार में आगरा का जैन समाज, उद्योगपति, व्यवसायी, समाजसेवी संस्थाओं एवं विभिन्न समुदायों के शोकातुर प्रतिनिधि भारी संख्या में सम्मिलित हुए।

मृदुभाषी एवं कोमल हृदय के धनी श्री सुमेरमल जी पाण्डया एक ऐसे विशाल व्यक्तित्व के धारी थे, जिन्होंने संपूर्ण जीवनयात्रा शान के साथ पूर्ण की। आपका जन्म जैनजगत के सुप्रसिद्ध धर्मनिष्ठ श्रेष्ठी श्री गंभीरमल पाण्ड्या के घर में राजस्थान स्थित कुचामन सिटी में दिनांक १४ अक्टूबर १९२९ को हुआ था। आप अपने पिता श्रावकशिरोमणि श्री गंभीरमल जी पाण्डया के तृतीय सुपुत्र थे। अल्पवय में ही आपका विवाह गया (बिहार) निवासी स्व० कन्हैयालाल जी सेठी की सुपुत्री श्रीमती गुलाब कुमारी के साथ सम्पन्न हुआ था।

आगरा के जैनसमाज में आपका प्रतिष्ठापूर्ण स्थान रहा है। आगरा नगर स्थित कमलानगर कॉलोनी के नव निर्मित जिनालय के जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के परम प्रभावक शिष्य प.पू. मुनि श्री क्षमासागर जी एवं प.पू. मुनि श्री सुधासागर जी की प्रेरणा एवं आशीर्वाद से आपको उक्त पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में सौधर्म इन्द्र की भूमिका निभाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ जो आपके धर्ममय जीवन का एक क्रान्तिकारी मोड़ प्रमाणित हुआ।

मदनलाल बैनाड़ा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'मैं तुम्हारा हूँ' : मुनि श्री क्षमासागर जी

समीक्षक : प्रो० महेश दुबे

'मैं तुम्हारा हूँ' मुनि श्री क्षमासागर जी की काव्य-यात्रा का पाँचवाँ सोपान है। इसमें उनकी ५९ कवितायें संकलित हैं। क्षमासागर जी विज्ञान के विद्यार्थी रहे हैं एवं एक चिंतक और मनीषी संत के रूप में लब्ध-प्रतिष्ठ हैं। उनकी कविताएँ स्फटिक की तरह पारदर्शी और सम्प्रेषणीय रूप से अभिव्यक्ति-समृद्ध हैं। इन कविताओं में एक संत और कवि दोनों एकाकार हो गये हैं।

अँग्रेजी के प्रसिद्ध कवि फिलिप लारकिन ने कहा था कि : प्रत्येक कविता अनिवार्यतः अपना ही एक नया सृजित ब्रह्माण्ड होती है। क्षमासागर जी के काव्य संग्रह- 'मैं तुम्हारा हूँ' को पढ़ते हुए इन कविताओं के असीम ब्रह्माण्डीय विस्तार का अनुभव होता है- जहाँ इस दृश्य जगत् और अनुभव की सीमाएँ छोटी पड़ जाती हैं। ये कविताएँ हमें जीवन और जगत् के पार ले जाती हैं। कुछ राग लिये, अनुराग लिये, पंक्ति-पंक्ति में विराग लिये, वीतराग की इन कविताओं में आध्यात्मिक व्याकुलता है, चेतना के प्रवाह का लालित्य है, परमात्मा का उल्लास है और पृथ्वी तथा काल के विस्तार को वृत्तित करता हुआ आदि और अंत है।

अद्भुत हैं ये कवितायें! इनका सत्य मौन में मुखर होता है और शब्दों में घुल जाता है। इन्हें पढ़ते हुए हमें रूप से अरूप की, पृथ्वी से आकाश की और पदार्थ से निराकार की यात्रा का अनुभव होता है। पारस्परिक सद्भाव से गुँथी हुई ये कविताएँ अपनी निःस्पृह वैयक्तिकता के लिये भी याद रखी जायेंगी।

डब्ल्यू.एच. डेवीज ने अपनी एक कविता में कहा था कि चिन्ताओं से भरा हुआ वह जीवन ही क्या, जहाँ खड़े होकर किसी चीज पर निगाह ठहराने का समय ही नहीं है। इन कविताओं में हम खड़े होते हैं, अपनी दृष्टि स्थिर करते हैं, सूक्ष्मता से अवलोकन करते हैं और फिर शुरू होती है एक सार्थक विचार-यात्रा, जिसमें यह प्रतीति बनी रहती है कि-

अब मृत्यु के झोंके
नहीं आएँगे
जीवन का
अमृतमय हो जाना
यही है।

ये कवितायें जीवन के ऐसे ही अमृतमय पाथेय का विश्वास दिलाती हैं, जहाँ-

परमात्मा से प्रेम

सब कुछ सहने का
साहस देगा।

ये कवितायें मानवीय गरिमा से अभिषिक्त और प्रज्ञा-समृद्ध हैं। यहाँ संत क्षमासागर का कवि-मन, कुंवर नारायण के शब्दों में-

अपने अकेलेपन में अधिक मुक्त
अपनी उदासी में अधिक उदार है।

वह एकांत के ऐश्वर्य से परिचित है और भीड़ की रिक्तता भी उसे मालूम है। तभी तो वह लिखता है-

जब आदमी
बाहर भीड़ से
घिर जाता है
तब मैं जानता हूँ
वह अपने भीतर
कितना अकेला
रह जाता है।

इन कविताओं में कवि का आग्रह कहे से कहीं ज्यादा उस पर ध्यान देने का है, जो वह नहीं कह रहा है या नहीं लिख रहा है। जो शब्दों के बीच रह गया है। क्योंकि शब्दों के बीच में ही तो खोजना है- सत्य को, ब्रह्म को। इसीलिये वह कहता है-

तुम उस अनलिखे को
पढ़ लेना
उस अनकहे को
सुन लेना।

प्रतिस्पर्धा के इस युग में आज हर व्यक्ति आगे होने का अहंकार लिये हुए है, बेतहाशा दौड़ रहा है। कवि हमें एक विचार-सूत्र देता है-

तुम्हारा आगे होना
किसी के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पीछे होने पर निर्भर हुआ ना
तब अहंकार कैसा?

इन कविताओं के आध्यात्मिक संस्पर्श में सामाजिक संवेदना की सान्द्रता है। व्यक्ति से समष्टि तक विस्तार की ज्यामिती को लिखते हुए, कवि कहता है-

मैं तुम्हारा हूँ
उस तरह
जिस तरह, कोई
परमात्मा का होता है।

कवि जानता है कि संवेदना ही हमें पूर्ण बनाती है। कवि की विरक्ति में सभी के प्रति अनुरक्ति है-

मैंने तो सभी को
अपने में पाया है
अपने में
सभी को पाने के लिये।

इन कविताओं में प्रज्ञा के, साधना के सूत्र बिखरे पड़े हैं। कवि कहता है परमात्मा को खोजने कहीं बाहर नहीं जाना है। यह यात्रा तो अपने घर वापस लौटने जैसी है-

ईश्वर को पाना
यानी
अपने में ही लीन होना
अपने को पा लेना है।

जैसे नदी वापस अपने उद्गम को लौटे या वृक्ष अपने बीज में समाहित हो जाये। यह अपने में ही परिपूर्ण होना है और यही प्रत्याहार है।

संग्रह में **'नई शिक्षा'** एक अलग मिजाज की कविता है। जड़ों से कटी हुई, आयातित जीवन-मूल्यों पर आधारित शिक्षा-व्यवस्था पर यह एक सात्विक व्यंग्य और सामयिक चेतावनी है। जो लोग शिक्षा में नित नये प्रयोग कर रहे हैं, उन तक कन्नि का यह संदेश अवश्य पहुँचना चाहिये कि-

अपनी प्रकृति खो कर
कोई कहीं का नहीं रहता।

यहाँ कवि का आग्रह एक ऐसी शिक्षा-नीति के लिये है जो नैसर्गिक प्रतिभा और कुशलता को विकसित कर सके।

मुनि श्री क्षमासागर की इन सरल, तरल और सहज कविताओं में गम्भीर वैचारिकता का प्रवाह है, सत्य का उन्मेष है, जीवन की प्रफुल्लता का संदेश है और वह सब कुछ है, जो आज के इस अध्यात्म-विपन्न और संस्कृति-दरिद्र समाज को चाहिये। **कुंवरनारायण** की काव्य-पंक्तियों को उद्धृत करते हुए, कहना चाहूँगा-

एक शून्य है
मेरे और अज्ञात के बीच
जो ईश्वर से भर जाता है।
एक शून्य है
मेरे हृदय के बीच
जो मुझे मुझ तक पहुँचाता है।

इन कवितओं को पढ़ते हुए कुछ ऐसा ही अनुभव होता है।

११०२, साँई-अंश
प्लाट क्र. ७, सेक्टर, ११
जुई नगर रेल्वे स्टेशन के सामने
सानपाडा, नवी मुम्बई-४००७०३

डॉ० सागरमलजी जैन सम्मानित

सुप्रसिद्ध जैन मनीषी तथा प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर के संस्थापक डॉ० सागरमलजी जैन को, जैन विश्वभारती लाडनूं द्वारा प्रतिष्ठित 'आचार्य तुलसी प्राकृत पुरस्कार' (१ लाख रूपये) से सम्मानित किया गया। डॉ० जैन सा० को यह पुरस्कार प्राकृत भाषा एवं साहित्य के क्षेत्र में उनके उत्कृष्ट योगदान के लिए प्रदान किया गया। उन्होंने यह राशि व्यक्तिगत रूप से स्वीकार न करके प्राच्य विद्यापीठ शाजापुर को ही समर्पित कर दी। डॉ० जैन सा० की इस उपलब्धि पर उन्हें शाजापुर नगर एवं देश-विदेश के अनेकों गणमान्य व्यक्तियों ने बधाई दी है। इसके पूर्व भी उन्हीं प्राकृत भाषा और जैन साहित्य एवं जैनदर्शन में उत्कृष्ट कार्यों हेतु एक लाख ग्यारह हजार रूपये प्राकृत भारती का गौतम गणधर पुरस्कार एवं जैना अमेरिका का प्रेसीडेन्सियल अवार्ड भी प्राप्त हो चुका है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाचार

अमरकंटक में आचार्य श्री विद्यासागर जी

अमरकंटक में 'मूकमाटी' महाकाव्य के रचयिता सन्त शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी ने भावों की महत्ता समझाते हुए कहा कि भाषा की अपेक्षा भावों की गूँज अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। भावों का खेल भव-भव को प्रभावित करता है। पर को परखने में पल-पल व्यतीत किए, निज को परखने का प्रयत्न ही नहीं किया। समता का सन्देश देते हुए आचार्यश्री ने बताया कि सबका अस्तित्त्व समान है, यह धारणा धारण करते ही संघर्ष शाँत हो जाता है। दो रोगी मिलकर परस्पर वेदना को कम कर लेते हैं।

आचार्य श्री विद्यासागर जी ने कहा कि संसार में सूर्योदय अनिवार्य है। सूर्योदय होते ही कमल खिल जाते हैं, पशु पक्षी, मानव में गतिविधियाँ प्रारंभ हो जाती हैं। दूरस्थ सूर्य के उदय से कमल खिल जाते हैं। अन्य क्रियायें आरंभ हो जाती हैं। सूर्य से प्राप्त ऊष्मा से प्राकृतिक क्रिया आरंभ हो जाती है। मानव का पाचन तंत्र सक्रिय हो जाता है। यह मान्यता विज्ञान ने भी स्वीकार कर ली है। शरीर की रचना सूर्य तत्त्व से सम्बन्धित है, सूर्य की ऊर्जा से संसार गतिमान् होता है। उर्जा का स्रोत दूर होते हुए भी हम ऊर्जा को ग्रहण कर लेते हैं, संचारित हो जाते हैं। आचार्यश्री ने कहा कि सूर्य से हमारा सम्बन्ध बना हुआ है, इसीलिये समस्त कार्य सम्पादित होते रहते हैं, ऐसा ही सम्पर्क दिव्य पुरुषों से स्थापित होते ही भवसागर का तीर भी दिख जाता है। आचार्यश्री ने बताया कि न तो सूर्य उदित होता है न हि अस्त। भ्रान्तिवश सूर्योदय और सूर्यास्त कहा जाता है। ऐसा ही भ्रम अन्य क्षेत्रों में भी व्याप्त है। विज्ञान दिव्य पुरुषों की दिव्यध्वनि की तलाश कर रहा है। अभी तक विज्ञान ऐसी क्षमता के यंत्र का आविष्कार नहीं कर सका है, वह ध्वनि लुप्त नहीं है गुप्त है। अनन्ताकाश में वह ध्वनि झंकृत हो रही है, आवश्यकता सम्पर्क स्थापित करने की है। जागरूक क्षमता हो, तो सम्पर्क हो जाता है, यह दिशाबोध देते हुए आचार्य श्री विद्यासागर ने बताया कि भाषा की अपेक्षा भावों की गूँज अधिक महत्त्वपूर्ण है। शब्द कर्ण का विषय है जबकि भाव मन से संबंध रखता है। हमारे पास योग्य मन भर होना चहिए। जब तक मन भोग, विषयकषाय के सम्पर्क में रहेगा, भाव प्रणाली से सम्बन्ध नही हो सकेगा।

आचार्यश्री ने बताया कि दूध में मलाई, घी का अस्तित्व विद्यमान है, किन्तु दिखता नहीं, विधिवत् प्रक्रिया के उपरान्त मलाई भी मिल जाती है और घी भी प्राप्त हो जाता है। दूध ठण्डा हो, तो मलाई नहीं मिलेगी तथा गर्म हो तो भी नहीं। दूध को गर्म कर ठण्डा करने पर ही मलाई की मोटी परत जम जाती है। गर्म होने पर विकार बाहर हो गए, विकार निकलने पर शान्त दूध से मलाई मिलेगी। अशान्त और उबलता दूध मलाई नहीं देगा। इस दृष्टांत के द्वारा मन को निर्मल करने की विधि समझाते हुए आचार्यश्री ने बताया कि मन से भावों का तादात्म्य स्थापित करने के लिए प्रशान्त होना अनिवार्य है। भावों का खेल भव-भव तक परिणाम देता है। धर्म की सभा में धन की विवेचना नहीं होती। यह धर्म सभा है धन सभा नहीं। काया पलट हो सकती है, आयुर्वेद चिकित्सा में कायाकल्प का विधान है। आधुनिक ज्ञान आविष्कार में लगा है। वर्षा ऊपर से होती है, हल नीचे चलता है, हलधर के हल से समस्यायों का हल हो जाता है। ऊपर वर्षा न हो तो समस्या विकराल हो जाती है, ऊपर की क्रिया का प्रभाव भीतर होता है, यह प्रतीति कराते हुए बताया कि रामचन्द्र जी सीता की तलाश में वन-वन भटक रहे थे कि सुग्रीव अपनी पत्नी की समस्या लेकर उपस्थित हो गए। लक्ष्मण ने कहा, भइया पहले स्वयं की समस्या का निदान कर लें तब दूसरे की समस्या देखेंगे, किन्तु राम तो राम थे। सुग्रीव को ढाँढस देते हुए कहा चिन्ता मत करो। परस्पर सहयोग और सह-अस्तित्व से पचास प्रतिशत निदान पहले ही हो जाता है। आचार्यश्री ने समता की सार्थकता समझाते हुए बताया कि संग्राम समाप्त हो जाता है, यदि सब अपनी सीमा में रहते हैं, अन्यथा संग्राम में अनेक ग्रामों का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। सबका अस्तित्व समान है, यह समझ में आते ही संघर्ष शान्त हो जाता है। अधिकार दूसरे पर रखने की लालसा रखते हैं, स्वयं पर अधिकार रख नहीं सकते, इस भाव को अभिव्यक्त करते हुए बताया कि पर को परखने के साधनों का बाहुल्य है, किन्तु निज को परखने का प्रयत्न कभी नहीं किया। टार्च के प्रकाश से पर को प्रकाशित करनेवालों को सावधान करते हुए आचार्यश्री ने कहा-ऐसी टार्च जलाओ जिससे स्वयं प्रकाशित हो सकें।

वेदचन्द्र जैन (पत्रकार) गौरेला, पेण्ड्रारोड

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्मेदशिखर जी गुणायतन में चमत्कार स्वर्ण रंग में बदली चाँदी की प्रतिमा

मधुबन (शिखर जी) ३ सितम्बर ०९ मधुबन में आज अद्‌भुत चमत्कार हुआ। संत शिरोमणी प.पू. १०८ आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के परम प्रभावक युवा शिष्य मुनि श्री प्रमाण सागर जी महाराज के ससंघ सान्निध्य एवं पर्युषण पर्व के पावन प्रसंग में चल रहे श्रावक संस्कार शिविर एवं जिन सहस्त्रनाम विधान के समापन अवसर पर देवाधिदेव १००८ अदिनाथ भगवान् की शोभा यात्रा निकालने की तैयारी चल रही थी। उसी क्रम में मध्यान्ह १२.०० बजे ज्यों ही भगवान् आदिनाथ जी की चाँदी की प्रतिमा को रथ में विराजमान किया गया, प्रतिमा का श्वेत वर्ण सामने से स्वर्णरंग में परिणत हो गया। इस चामत्कारिक घटना के घटते ही शिविरार्थी एवं अन्य श्रद्धालु भक्ति से झूम उठे। पूरा मधुबन भगवान् आदिनाथ एवं आचार्य श्री विद्यासागर जी एवं मुनि श्री प्रमाण सागर जी के जयकारों के नाद से गूँज उठा। मूर्ति के दर्शनार्थ जैन-अजैन सभी श्रद्धालुओं की भीड़ उमड़ पड़ी। रथ पर उक्त प्रतिमाजी को विराजमान कर बैठने का सौभाग्य श्री सुनील कुमार जी सरावगी कोलकाता को प्राप्त हुआ था। वे इस घटना से अत्यंत अभिभूत हो उठे।

प.पू. मुनि श्री प्रमाण सागर जी महाराज ने समापन समारोह में अपने संबोधन में कहा कि प्रतिमा का स्वर्णवर्ण में बदलना एक शुभ संकेत है। 'गुणायतन' में जिनालय बनने के बाद जबसे देवाधिदेव चंद्रप्रभ भगवान् की अतिशयकारी प्रतिमा यहाँ विराजमान हुई है, तब से निरंतर यहाँ अतिशयों का सिलसिला जारी है। जिनालय निर्माण के बाद पहली बार यहाँ जिन सहस्त्रनाम विधान एवं श्रावक संस्कार शिविर जैसा वृहद् अनुष्ठान हुआ, जिसमें, संपूर्ण देश से लगभग आठ सौ शिविरार्थी सम्मिलित हुए, जो अपने आप में एक अतिशय ही है ओर फिर उक्त अनुष्ठान के समापन पर जो प्रतिमा के वर्ण परिवर्तन की घटना घटी है, वह निश्चत ही एक चमत्कार है और इस तरह का चमत्कार पहली दफा तीर्थराज की पावन भूमि पर घटित हुआ है। यह इस बात का संकेत है कि निर्माणधीन 'गुणायतन' का कार्य शीघ्र पूर्ण होगा और यह जिनधर्म की प्रभावना का प्रबल निमित्त बनेगा।

'गुणायतन' भूमि पर जिनालय निर्माण एवं उसमें मूलनायक चंद्रप्रभ भगवान् की प्रतिमा पंचकल्याणक प्रतिष्ठापूर्वक विराजमान करने का सौभाग्य प्राप्त किया है अनन्य गुरुभक्त एवं श्रेष्ठी श्री विनोद काला कोलकाता ने। पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव मुनि श्री प्रमाणसागर जी महाराज के ससंघ सान्निध्य में 'गुणायतन' भूमि पर ही अत्यंत सादगी से सपन्न हुआ, जो वर्तमान शती का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। ब्र० अन्नु भैया ने 'गुणायतन' से जन समुदाय को अवगत कराते हुए कहा कि यह पू. मुनि श्री प्रमाण सागर जी महाराज की अदभुत परिकल्पना है, जिसके द्वारा आधुनिक तकनीक से जैनदर्शन के अन्तर्गत नर से नारायण बनने के क्रमिक सोपान १४ 'गुणस्थानों' को जीवन्त रूप में प्रदर्शित किया जायेगा। पोथियों की बात पलों में समझायी जायेगी। कैवल्य प्राप्ति के उपरान्त भगवान के श्री विहार, समवशरण एवं मुक्तिगमन के दृश्य ध्वनि एवं प्रकाश के माध्यम से देखकर दर्शक रोमांचित हो उठेंगे। उन्होंने कहा कि पत्थरों द्वारा पुरातन शैली में निर्मित 'गुणायतन' विश्व की एक अनुपम कृति होगी जो हजारों वर्षों तक जैनत्व की प्रभावना का प्रबल निमित्त बनेगी।

विमल कुमार सेठी
गया (बिहार)

भोपाल (म०प्र०) में सन्त-चातुर्मास

श्री आदिनाथ दि० जैन मन्दिर चौक, भोपाल में पूज्य मुनि श्री विश्वलोचनसागर जी एवं पूज्य मुनि श्री विश्ववीरसागर जी तथा परमपूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी के शिष्य पूज्य एलक नि:शंकसागर जी का चातुर्मास चल रहा है। आपके सान्निध्य में भव्य श्रावकसाधना शिविर सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। क्षमावाणी दिवस भी चौक के मन्दिर एवं झिरनों के मन्दिर में मनाया गया। १० सितम्बर २००९ को झिरनों के मन्दिर में सतना (म०प्र०) से पधारे विद्वान् श्री निर्मल जैन एवं अन्य स्थानीय सज्जनों का सम्मान किया गया।

प्राच्य विद्यापीठ शाजापुर की उपलब्धियाँ

माननीय साध्वी संवेगप्रज्ञाजी एवं साध्वीश्री ज्योत्सनाश्री म.सा. को जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय लाडनूं (राज.) द्वारा उनके शोध-प्रबन्धों पर पी-एच.डी. की उपाधि प्रदान की गई। आपने यह शोधकार्य अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त जैन विद्वान् एवं प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर के संस्थापक निदेशक डॉ० सागरमलजी जैन के निर्देशन में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पन्न' किया। आप दोनों की इस उपलब्धि पर जैन समाज को गर्व है। इसके पूर्व भी प्राच्य विद्यापीठ शाजापुर से १६ विद्यार्थी पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त कर चुके हैं।

पाँच प्रशिक्षार्थियों का चयन

म० प्र० के एडीपीओ की पूर्व में लिखित परीक्षा में उत्तीर्ण ८ प्रशिक्षार्थियों द्वारा दिये गये साक्षात्कार में ५ प्रशिक्षार्थियों का चयन होना संस्थान की सफलता का उल्लेखनीय प्रमाण है। यह सफलता श्री त्रिलोकराज शास्त्री, कु. अविसारिका जैन, कु. रीता भण्डारी, कु. सविता बजाज एवं सतीश शर्मा ने अर्जित की है।

मुकेश सिंघई

मुनि श्री क्षमासागर जी का २८वाँ दीक्षा दिवस

परम पूज्य आचार्य विद्यासागर जी महाराज के शिष्य पूज्य मुनिश्री क्षमासागर जी महाराज का २८वाँ दीक्षा दिवस समारोह, आचार्यश्री विभवसागर जी महाराज एवं आर्यिका रत्न १०५ कुशलमति माताजी के ससंघ सान्निध्य में श्री वर्णी दिगम्बर जैन गुरुकुल मढ़िया जी, जबलपुर म०प्र० में मनाया गया।

कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री हरिरंजनरावजी (जिलाधीश जबलपुर) द्वारा की गई एवं मुख्य अतिथि के रूप में जिलाधीश महोदय जी की पत्नी श्रीमती नूपुरजी, श्री खुरानाजी (कुलपति) एवं विशिष्ट अतिथि के रूप में श्री कृष्णकांत चतुर्वेदी जी रहे।

सांस्कृतिक प्रस्तुतियों में पं० नीरज जी सतना, पं० श्रेयांश जी दिवाकर, पं० दयाचंद जी सतना आदि की भूमिका मुख्य रही। श्री सरोज कुमार जी इन्दौर, अजित जी एडव्होकेट एवं अमित पड़रिया द्वारा कुशल मंच संचालन किया गया। कविसम्मेलन की प्रस्तुतियों में राकेश राकेन्दु जबलपुर, एवं तरल जी द्वारा मनमोहक कवित्त प्रस्तुत किया गया।

मुनिश्री की लेखनी से प्रसूत कवितासंग्रह का विमोचन श्री खुराना जी, कुलपति द्वारा किया गया।

कमलकुमार दानी

जैन मुनि उपाध्याय श्री निर्भयसागर जी का सेंट्रल जेल में प्रवचन

दिगम्बर जैन मुनि उपाध्याय श्री निर्भयसागर जी, मुनिश्री अमूल्य सागर जी, क्षु० जिनदत्त सागर जी, ब्र० श्रीपाल भैयाजी वाराणसी नगरी में वर्षायोग कर रहे है। उपाध्याय श्री ससंघ प्रवचन हेतु सेंट्रल जेल पहुँचे। वहाँ केन्द्रीय वरिष्ठ जेल अधीक्षक श्री सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, कारागार-अधीक्षक एस.एन. दुबे आदि अधिकारियों ने मुनिश्री की आगवानी की। प्रांगण जयकारों से गूँज उठा। वहाँ पर २३०० कैदियों ४०० पुलिस जवानों एवं ३०० साथ पधारे भक्तों के बीच कारागार में उपाध्यायश्री ने सम्बोधित करते हुए कहा- 'यह कारागार नहीं, सुधारागार है। यहाँ अपराधियाँ को सुधार हेतु लाया जाता है, यातना देने हेतु नहीं।'

सुगन्धकुमार जैन, शास्त्री

घंसौर (म० प्र०) में क्षमा दीदी का सल्लेखना-पूर्वक देहत्याग

परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के आशीर्वाद से एवं उनकी प्रथम शिष्या आर्यिका श्री गुरुमति माता जी की प्रेरणा से पुष्परानी ने १३ जून को स्वेच्छा से अनाज का त्याग कर पानी लेते हुए २४ जून को २ प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। आर्यिका १०५ अपूर्वमति माता जी के सान्निध्य में ७ जुलाई, गुरुपूर्णिमा के दिन उन्होंने सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। माता जी के द्वारा उन्हें नया नाम क्षमा दीदी दिया गया। आर्यिका १०५ अपूर्वमति माताजी, अनुत्तरमति माता जी एवं अगाधमति माताजी के हर पल के सहयोग से क्षमा दीदी ने कैंसर जैसी बीमारी होते हुए शरीर की ओर ध्यान न देकर आत्मा की ओर ध्यान दिया। तीनों समय सामायिक एवं व्रतों का निरतिचार पालन करते हुए १५ अगस्त २००९ को सल्लेखनापूर्वक शरीर को परित्याग किया।

सुरेशचन्द्र जैन

कु० वाणी अजमेरा को 7 अवार्ड

लिम्बा बुक में चार बार वर्णित व लिम्बा बुक ऑफ वर्ल्ड रिकार्ड में दर्ज तथा नेशनल अवार्ड प्राप्त कर, राजस्थान को गौरवान्वित करनेवाली वीणा को मुख्यमंत्री गहलोत ने राजस्थान संगीत नाटक अकादमी की ओर से पुरस्कृत किया और लन्दन में वर्ल्ड स्प्रिचुअल युनिवर्सिटी में दादी माँ-प्रकाशमणि (माउन्ट आबू) एवं सिंगापुर में भारत के हाई कमीश्नर से सम्मानित हुईं। कोलकाता में 'जैनराष्ट्रगौरव' अवार्ड व यूनेस्को फैडरेशन राजस्थान से भी सम्मानित हुईं। हाल ही अ. भा. भगवान् ऋषभदेव संगीत पद्म अवार्ड से अजमेर में विभूषित हुईं।

श्री निहाल अजमेरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनभाषित के नये आजीवन सदस्य

श्री नमन कुमार गंगवाल
२०/ए, महबूब की कोठी, आना सागर
लिंक रोड, अजमेर (राजस्थान) - ३०५००१

ब्र. देवेन्द्र भैया, श्री अनिल कुमार जैन
वर्णी वाचनालय के पास, कटरा बाजार
सागर (म.प्र.) - ४७०००२

श्री अशोक कुमार जैन
मे. सिंघई नेत्रालय, विजय नगर,
मकरौनिया सागर (म.प्र.) ४७०००२

श्री अजित कुमार जैन सर्राफ
पिता श्री कोमल चन्द्र जैन सर्राफ,
मे. सर्राफ मेडीकल स्टोर्स
जामा मस्जिद के पास,
पंजाब नेशनल बैंक के बाजू में
विजय टॉकीज रोड, सागर (म.प्र.)

श्री अभयकुमार जी श्रीधर पाटिल
फ्लैट नं. २, एस. कुमार रेसीडेन्सी
निशांत कॉलोनी, मोती चौक,
बसंत मार्केट, यार्ड जबल,
साँगली- ४१६४१६ (महाराष्ट्र)

श्री प्रवीण राजाराम नबले
मु.पो. वालवा तह. वालवा
जिला- साँगली (महाराष्ट्र)

श्री राहुल बाबूराव मूंग
गाला नं. १४७, शिवाजी मार्केट
कोल्हापुर (महाराष्ट्र) ४१६००२

श्री कुमार बालगोड़ा पाटिल
नाँदणी ता. शिरोल,
जिला-कोल्हापुर, (महाराष्ट्र)

श्री अरुण जिनधर खोत
पार्श्वनाथ नगर, प्लाट नं. ३२,
जैनमंदिर के पास कुपताड़ रोड़,
साँगली (महाराष्ट्र)

श्री नितिन बसंतराव जैन
गणेश पेठ बसमत ता. बसमत
जिला- हिंगोली (महाराष्ट्र)

श्री नीलेश कुमार जैन
मे. विजय कार्नर १२४, गलगला तिराहा
जबलपुर (म०प्र०)

श्री चन्द्रकुमार जैन
१२६६, भवानी कॉम्प्लेक्स के सामने,
राईट टाऊन जबलपुर- ४८२००२ (म०प्र०)

श्री भैयालाल जी जैन
प्रकाशचंद्र जी बहेरियावाले (कैंची बिड़ी)
बाहुबली कॉलोनी, सागर (म०प्र०)

श्री ऋत्विक राजेश पाटिल
४४०, गावभाँग मारुति मंदिर मागे,
साँगली (महाराष्ट्र)

श्री मयूर प्रकाश वग्याणी
३०, अप्पासाहिव पाटिल नगर,
सोना क्लीनिक जवल
आँवराई मागे, साँगली (महाराष्ट्र) ४१६४१६

श्री करन मनीष तेजानी
होटल इजादूंद मीवार
सतारा- ४१२८०६ (महाराष्ट्र)

श्रीमती अजित कुमारी जैन
श्री महेन्द्र कुमार जैन
महावीर कॉलोनी, शासकीय
अस्पताल के पीछे, औबेदुल्लागंज,
भोपाल (म०प्र०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

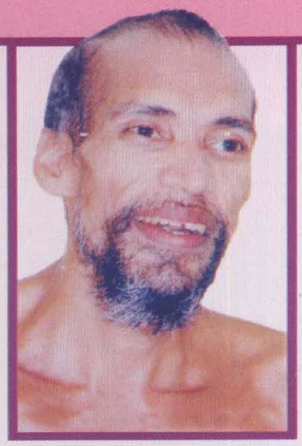

इस तरह

– मुनि श्री क्षमासागर जी

एक उड़ते
पखेरू ने
मुझसे निरन्तर
उड़ते रहने को कहा
एक पेड़ ने
तूफानों के बीच
अडिग
खड़े रहने को कहा
ओर एक नदी
मुझसे
निरन्तर
बहते रहने को कह गयी

सूरज ने
सुबह आकर
मुझसे
दिन-भर
रोशनी देते रहने को कहा
चाँद-सितारों ने
रात-भर
अँधेरों से
जूझने को कहा
और एक नीली झील
मुझे बाहर-भीतर
एक सार
निर्मल होने को कह गयी

सागर ने
धीरे
लहरा कर कहा-
सीमाओं में रहो
आकाश ने अपने में
सबको समा कर कहा-
असीम होओ
और एक नन्हीं बदली
प्रेम से भर कर
मुझसे
निरन्तर
बरसने को कह गयी
मेरी जिन्दगी
इस तरह
सबकी हो गयी।

'पगडंडी सूरज तक' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि नं. UPHIN/2006/16750

मुनि श्री योगसागर जी की कविताएँ

१

है भक्त!
विषयों से विरक्त
हर वक्त अनुरक्त
सशक्त है भगवत्
भक्ति में
जिससे लुप्त, सुप्त और
गुप्त शक्ति को
अभिव्यक्त करता है यह
वहीं भक्ति है जो
मुक्ति को दिलाती है।

२

हे प्रभु!
कैसा मेरा भाग्य
कैसा वक्त आया
यह क्या देख रहा हूँ
धर्म की ओट में
स्वार्थ छिप रहा है
अर्चनावाले भर्त्सना
करते हैं
मेल-मिलापवाले
विलाप कराते हैं
निकटवाले ही विकट
में डालते हैं
प्रभु ने यही कहा
स्वार्थी की यही पहचान
प्रशंसा की बातों से
मालिश करता है
अच्छे-अच्छे पकवान खिलाकर
पालिश करता है
जब स्वार्थ सिद्ध नहीं होता है
वो नालिश करता है।

३

मोहित में
मो-हित नहीं
अहित है
मोहित तो
मोहरहित
आत्मा में है।

४

गुरु की खुशी में
शिष्य के दिल में
खुश्की होती है
तो कहना होगा
समर्पण का अभाव है
और शिष्य जिन बातों
से खुश होता है
उससे यदि गुरु को
खुश्की होती है
तो कहना होगा
अप्रभावना की यही
निशानी है।

प्रस्तुति - प्रो० रतनचन्द्र जैन

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक : रतनलाल बैनाड़ा द्वारा एकलव्य ऑफसेट सहकारी मुद्रणालय संस्था मर्यादित, 210, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित एवं 1/205 प्रोफेसर कॉलोनी, आगरा-282002 (उ.प्र.) से प्रकाशित। संपादक : रतनचन्द्र जैन।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org